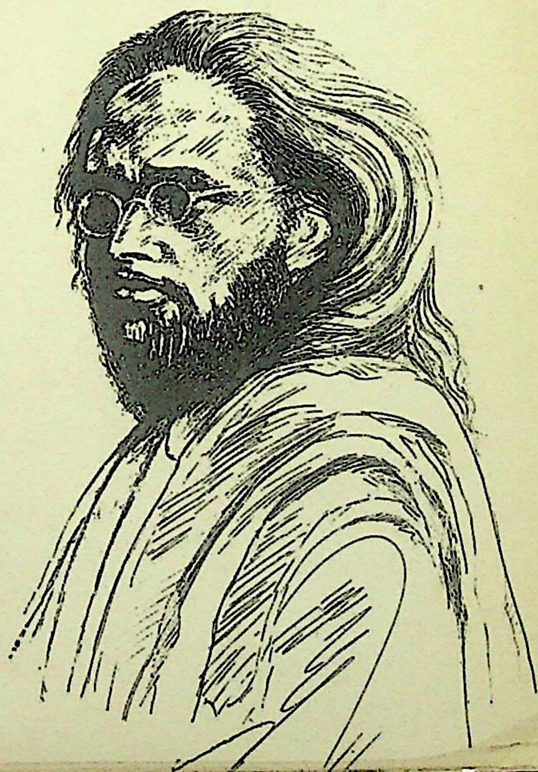


अध्यापक पूर्ण सिंह

रामचन्द्र तिवारी



भारतीय
साहित्य के
निर्माता



अध्यापक पूर्ण सिंह

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं, इसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में लेखन-कला का सम्भवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख।

नागार्जुन कोण्डा, दूसरी सदी ई.
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

अध्यापक पूर्ण सिंह

रामचन्द्र तिवारी



साहित्य अकादेमी

Adhyapak Puran Singh : A monograph in Hindi by Ramchandra Tiwari on the modern Hindi and Punjabi writer, Sahitya Akademi, New Delhi (1998) Rs. 25

प्रथम संस्करण : 1998

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय
रवीन्द्र भवन, 35 फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001
विक्रय विभाग : स्वाति, मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय
172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुम्बई 400 014
जीवनतारा विल्डिंग, चौथा तल, 23 ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता 700 053

304-305, अन्ना सलाई तेनामपेट, चेन्नई 600 018
एडीए रंगमन्दिर, जे. सी. मार्ग, वंगलौर 560 002

ISBN 81-260-498-3

मूल्य : पच्चीस रुपये

शब्द संयोजक : क्वालिटी प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली 110 093
मुद्रक : पवन ऑफसेट, नवीन शाहदरा, दिल्ली 110 032

अनुक्रम

1

काल और देश

अध्यापक पूर्ण सिंह ने 1897 ई. में रावलपिण्डी के एक हाईस्कूल से मैट्रिकुलेशन की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। इसके बाद 1900 ई. तक वे लाहौर के डी. ए. वी. कालेज के छात्र रहे। यही वह समय था जब वे देश के वातावरण से परिचित और प्रभावित हो सकते थे। इस समय के भारत के पूरे सांस्कृतिक, राजनीतिक क्षितिज पर दृष्टि दौड़ाने से यह स्पष्ट हो जाता है कि अब तक पूरा राष्ट्रीय मानस नवजागरण के आलोक से दीप्त हो उठा था। बंगाल में राजा राममोहन राय (1772 से 1833 ई.) के साथ आरम्भ होने वाला नवजागरण स्वामी विवेकानन्द (1863-1902 ई.) के समय तक आते-आते सांस्कृतिक, सामाजिक सुधारों से आगे बढ़कर देश-प्रेम सामाजिक न्याय और विश्वबन्धुत्व की भावना से ओत-प्रोत हो चुका था। अंग्रेज़ों के दबाव में आकर अपनी पारम्परिक सांस्कृतिक उपलब्धियों के प्रति हीन भावना का आरम्भिक दौर समाप्त हो गया था। 1893 ई. में शिकागो के विश्वधर्म सम्मेलन में स्वामी विवेकानन्द अपनी ओजस्वी वाणी के दिव्य प्रभाव से भारतीय धर्म साधना की उदात्त सार्वभौम चेतना की अमिट छाप छोड़कर सारे विश्व को चकित कर चुके थे। देश में, विशेषतः पंजाब में आर्यसमाज का प्रभाव बढ़ रहा था। स्वामी दयानन्द ने स्वयं 1877 ई. में लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना की थी। जिस डी. ए. वी. कालेज के अध्यापक पूर्ण सिंह छात्र थे वह आर्यसमाज की देन था। सामाजिक धार्मिक सुधारों की आड़ में राष्ट्रप्रेम की भावना पल रही थी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में अब राजनीतिक सरगर्मियाँ बढ़ गई थीं। महाराष्ट्र में बाल गंगाधर तिलक (1856-1920 ई.) और गोपाल कृष्ण गोखले (1866-1915 ई.) जैसे राष्ट्रव्यापी प्रभाव रखने वाले नेता समाज सुधार के साथ राजनीतिक चेतना के प्रसार में अपनी

सक्रिय भूमिका अदा कर रहे थे। 1893 ई. में लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन हो चुका था। इसमें लाला लाजपत राय ने भाग लिया था। लाला जी आर्यसमाजी थे। आर्यसमाज के नेता सामाजिक सुधारों के साथ देश-भक्ति के क्षेत्र में भी अग्रणी थे। उस समय देश के सांस्कृतिक क्षितिज पर स्वामी विवेकानन्द सूर्य की भाँति चमक रहे थे। राजनीति के क्षेत्र में तिलक और गोखले की जोड़ी विशेष रूप से सक्रिय थी। तिलक अपनी तेजस्विता और प्रखर राष्ट्रीयता के नाते युवकों को विशेष प्रिय थे। उस समय तक सामाजिक सुधार और राजनीतिक सक्रियता के क्षेत्र अलग नहीं हुए थे। आर्यसमाज वेदों की व्याख्या के बल पर अपनी विश्वसनीयता बनाये हुए था। तिलक गीता के श्रेष्ठ व्याख्याता थे। गीता का अनासक्ति मूलक कर्मयोग उनकी राजनीतिक ऊर्जा का आधार था। हिन्दुत्व के प्रबल समर्थक स्वामी विवेकानन्द अमेरिका से लौटकर पूरे देश में व्यावहारिक वेदान्त का प्रचार कर रहे थे। इसी क्रम में सन् 1897 ई. में उन्होंने लाहौर की यात्रा की थी। स्वामी विवेकानन्द आर्यसमाजियों के त्याग, समाज-सुधार और राष्ट्रप्रेम से प्रभावित थे किन्तु उनकी कट्टरता उन्हें खिन्न कर देती थी। स्वामी विवेकानन्द किसी भी धर्म या सम्प्रदाय के निन्दक नहीं थे। वे सत्य को कहीं से भी ग्रहण कर सकते थे। उन्होंने छात्र-जीवन में ही आधुनिक विज्ञान, विश्व इतिहास तथा दर्शन में असाधारण योग्यता प्राप्त कर ली थी। वे एक उदार और आधुनिक व्यक्ति थे। वे फ्रांसीसी क्रान्ति के नेता रोवेस थियरे के प्रशंसक थे। वे आर्यसमाज की प्रगतिशील भूमिका को स्वीकार करते थे। सन् 1897 ई. में जब वे लाहौर पहुँचे थे, तो आर्य समाजियों ने मूर्तिपूजा के प्रश्न पर उनसे शास्त्रार्थ किया था। उन्होंने अपनी विनम्रता और योग्यता से आर्यसमाज के समर्थकों को भी प्रभावित किया था। पंजाब में उनकी भेंट युवा तीर्थराम से हुई। तीर्थराम मिशन कालेज लाहौर में गणित के प्रोफ़ेसर और वेदान्त दर्शन के अध्येता थे। स्वामी विवेकानन्द ने वेदान्त को नया अर्थ दिया था। उनका वेदान्त व्यावहारिक वेदान्त था। यह वेदान्त मनुष्य को इस लौकिक जगत् से परे किसी अलौकिक आनन्द-भूमि में ले जाकर निर्विकल्प समाधि में लीन कर देने वाला नहीं था। यह वह वेदान्त था जो मनुष्य को परिवार, देश, सम्पूर्ण विश्व और मानवता से एकात्म करके इनके लिए सर्वस्व अर्पित करने की प्रेरणा और शक्ति प्रदान करता था। यह वह वेदान्त था, जो दीन-दुखियों के दर्द और अभाव को अपना दुख-दर्द और अभाव मानने और महसूस करने की दीक्षा देता था। यह वेदान्त विवेक की कसौटी पर निखरकर सामने आया था। स्वामी विवेकानन्द के

अनुसार जिसे हम प्रेरणा कहते हैं वह विवेक का ही विकास है। अन्तर्दृष्टि तक पहुँचाने वाला रास्ता विवेक का ही रास्ता है। सच्ची प्रेरणा कभी विवेक के ख़िलाफ़ नहीं जाती। वेदान्त के अध्येता तीर्थराम, स्वामी विवेकानन्द से बहुत प्रभावित हुए थे। उन्हीं की प्रेरणा से उन्होंने व्यावहारिक वेदान्त के प्रचार का व्रत लिया। संन्यास लिया और तीर्थराम से स्वामी रामतीर्थ हुए।

जिस समय स्वामी विवेकानन्द पंजाब के जनमानस को आन्दोलित कर रहे थे और तीर्थराम उनसे वेदान्त का नया अर्थ समझ रहे थे। उस समय अध्यापक पूर्ण सिंह पंजाब यूनिवर्सिटी की इण्टर परीक्षा के लिए तैयारी कर रहे थे। वे स्वामी विवेकानन्द के व्यक्तित्व से अभिभूत हो गये थे किन्तु उनके विचारों को समझने का विवेक उनमें विकसित नहीं हुआ था। ध्यान सिंह की हवेली में विवेकानन्द जी का जो भाषण हुआ था उसे पूर्ण सिंह ने सुना था। उस समय का चित्र अंकित करते हुए वे कहते हैं—"स्वामी जी ध्यान सिंह की हवेली में ठहरे हुए थे। मुझे आज भी यह दृश्य स्पष्ट रूप से दिखायी देता है, जब स्वामी जी का भाषण सुनने हवेली के उस विशाल कक्ष में लाहौर का कितना विशाल जनसमूह एकत्र था। उस समय मैं निरा बालक ही था। पंजाब विश्वविद्यालय की इण्टर परीक्षा के लिए कालेज में पढ़ रहा था किन्तु उस दृश्य की मेरे हृदय पर जो अमिट छाप पड़ी, वह किसी प्रकार नहीं धुल सकती।" इसके बाद पूर्ण सिंह स्वामी जी के व्यक्तित्व और प्रभाव का चित्र खींचते हुए कहते हैं—"उस समय उनकी अलौकिक छवि उत्तम स्वास्थ्य से दमकता हुआ विशालकाय शरीर संन्यासी की काषाय वेशभूषा, बड़ी-बड़ी आकर्षक आँखें जिनका जादू सारे वातावरण में व्याप्त हो रहा था, सिर पर नारंगी रंग का पंजाबी शैली में बँधा हुआ साफ़ा, गेरुआ रंगीन लहराता हुआ दुपट्टा और इन सबके साथ उनकी सौम्य मुद्रा दर्शकों को प्राचीन ऋषियों का स्मरण करा रहे थे।" इस दृश्य ने पूर्ण सिंह की बुद्धि को भले प्रभावित न किया हो, उनके अवचेतन में वेदान्त की महिमा की एक लकीर अवश्य खींच दी थी। प्रकट है कि सन् 1900 तक के भारतीय सांस्कृतिक और राजनीतिक आन्दोलनों का व्यक्त प्रभाव पूर्ण सिंह पर नहीं पड़ा था। उन पर इनका सीधा प्रभाव 1903 ई. के उपरान्त जापान से लौटने के बाद पड़ा।

जिस जापान में पूर्ण सिंह औद्योगिक रसायन की शिक्षा ले रहे थे, वह उस समय एशिया महाद्वीप के क्षितिज में प्राची का सूर्य बनकर दमक रहा था। उसने यूरोपीय पद्धति पर उद्योग-धंधों का विकास किया था और वैज्ञानिक शिक्षा पर विशेष बल दिया था। 1894-95 ई. में उसने चीन को हराकर अपनी शक्ति

का प्रमाण दे दिया था और अब रूस को चुनौती देने की स्थिति में आ गया था। पूर्ण सिंह ने जिस जापान में तीन वर्षों तक शिक्षा प्राप्त की वह शक्ति और उत्साह से भरा हुआ एक स्वतंत्र उन्नत देश था। वहाँ पूर्ण सिंह ने जापानी सीखी और जापानी साहित्य से परिचय प्राप्त किया। वहीं उन्होंने बौद्ध धर्म के महत्त्व को समझा और उसे अपने जीवन में चरितार्थ करने की कोशिश की। भारतीय सांस्कृतिक नव जागरण का प्रभाव उन पर 1902 ई. में स्वामी रामतीर्थ के प्रभाव में आने के बाद पड़ा। यह नवजागरण का वह रूप था, जो मूलतः स्वामी विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त के रूप में मूर्त हुआ था और अब स्वामी रामतीर्थ द्वारा पुनराख्यायित होकर पूर्ण सिंह के सामने आया था। इसमें परमात्मा की सर्वव्यापकता, मनुष्य मात्र की एकता, कर्मठता, पर-दुख-कातरता, सेवा, त्याग, देश-प्रेम और स्वातंत्र्य-चेतना का अद्भुत सम्मिश्रण था। 1906 ई. तक अर्थात् स्वामी रामतीर्थ के जीवित रहने तक, पूर्ण सिंह का प्रेरणा-स्रोत यही वेदान्त दर्शन था। 1908 ई. के आस-पास अर्थात् देहरादून में 'इम्पीरियल फ़ारेस्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट' के केमिकल एडवाइजर होने के बाद उनका ध्यान सिख गुरुओं की ओर गया। 1909 ई. में वे हिन्दी-साहित्य की गतिविधियों से परिचित हुए और 1912 ई. में भाई वीर सिंह के सम्पर्क में आने के बाद पंजाबी भाषा और पंजाबी साहित्य के प्रति उनका विशेष लगाव हुआ।

इस समय हिन्दी-साहित्य में द्विवेदी-युग (1900 से 1920 ई.) चल रहा था। साहित्य पर तिलक का प्रभाव अधिक था। नवजागरण का आलोक तो भारतेन्दु-युग (1867 से 1900ई.) में ही हिन्दी-साहित्य में प्रकाश-रश्मियाँ विकीर्ण कर चुका था। हम अपनी भाषा और अपनी जातीय संस्कृति का महत्त्व पहचान चुके थे। समाजसुधार, स्त्री-शिक्षा, सामाजिक एकता, अंधविश्वासों और रूढ़ियों का विरोध, स्वदेशी का प्रयोग और प्रचार, देश-वत्सलता, अंग्रेज़ी शासन का विरोध आदि बातों की ओर हमारा ध्यान 'भारतेन्दु' ने आकृष्ट कर दिया था। द्विवेदी-युग प्रखर राष्ट्रीयता और विवेकवादी बौद्धिक वैज्ञानिक दृष्टि के स्वीकार का युग था। 1905 ई. में लार्ड कर्जन द्वारा बंगाल के दो भाग कर दिये जाने के बाद देश में राष्ट्रीय एकता और अंग्रेज़ी सत्ता के प्रति असंतोष का जो ज्वार उठा था उससे हिन्दी-साहित्य भी विशेष रूप से प्रभावित हुआ था। उस समय देश के सर्वमान्य नेता तिलक ने बंगाल की जनता से कहा था—"निषेध-पत्र, प्रार्थना-पत्र और सभा के प्रस्तावों से सरकार के कानों पर जूँ तक नहीं रेंग सकती। इसके लिए तो आप सरकार की अर्थ-रचना की नाड़ियों को बंद करने का स्वदेशी और बहिष्कार

का मार्ग अपनायें तभी कुछ असर हो सकता है। इस मार्ग पर आप पाँच साल चलेंगे तो यूरोप में युद्ध छिड़कर रहेगा। हिन्दुस्तान के वाजार पर अंग्रेज़ पूरी तरह छा गये हैं और यह वात यूरोप के बलवान राष्ट्रों को बहुत बुरी तरह अखरती है। हममें अंग्रेज़ों से लड़ने की शक्ति नहीं, तो आइए हम उन लोगों को उकसा दें जो अंग्रेज़ों से लड़ सकते हैं। शत्रु के शत्रु को उकसाने का कार्य बहिष्कार के और अपना घर सुधारने का कार्य स्वदेशी के द्वारा करने का यह दुधारा हम चलावें।'' उस समय की हिन्दी-पत्रकारिता तिलक के विचारों को मुखरित करती है। कलकत्ता से प्रकाशित हिन्दी के तेजस्वी पत्र *भारतमित्र* ने कर्जन की नीतियों का खुलकर विरोध किया था। हिन्दी-भाषी क्षेत्र में उस समय *सरस्वती* सर्वमान्य पत्रिका थी। *सरस्वती* का स्वर उतना प्रखर नहीं था। उस काल की राजनीतिक चेतना को मुखरित करने वाली पत्रिका *मर्यादा* (प्रयाग 1910 ई.) थी। *मर्यादा* के अतिरिक्त *'अभ्युदय'* (प्रयाग 1907 ई.) *'हन्दी केसरी* (नागपुर 1907 ई.), *कर्मयोगी* (प्रयाग 1909 ई.), *प्रताप* (कानपुर 1913 ई.) आदि पत्रिकाओं ने राष्ट्रीय चेतना को दृढ़ और विकसित किया। *मर्यादा* ने तो 'जर्मनी का अभ्युदय' (नवम्बर 1911 ई.) 'टर्की की जागृति' (सितम्बर-अक्टूबर 1912 ई.) 'फ्रांस का राष्ट्र विप्लव' (सितम्बर-अक्टूबर 1912 ई.) आदि निबन्ध प्रकाशित करके राष्ट्रीय चेतना के स्वर को प्रेरित और प्रभावित करने का कार्य किया था। *सरस्वती* का रुख नरम था। वह क़ानून की मर्यादा के भीतर रहकर राष्ट्रीय जागरण को गति और दिशा दे रही थी। उसने ज्ञान-विज्ञान के अनेक क्षेत्रों से सम्बद्ध गम्भीर सामग्री का प्रकाशन करके हिन्दी-भाषी जनता के मानसिक क्षितिज का विस्तार किया और विवेकवादी जीवन-दृष्टि को पुष्ट किया। 1909 ई. में जब पूर्ण सिंह का प्रथम निबन्ध 'सच्ची वीरता', *सरस्वती* में प्रकाशित हुआ तो हिन्दी-जगत् ने विचार और शैली दोनों स्तरों पर नवीनता और ताज़गी का अनुभव किया। पूर्ण सिंह भारतीय राष्ट्रीय जागरण की सांस्कृतिक चेतना और जापान की उदार नैतिक आध्यात्मिक दृष्टि दोनों के संश्लेष से नवजागरण का नया स्वर मुखरित कर रहे थे। इस निबन्ध में उन्होंने एक साथ पैग़म्बर मुहम्मद, इमरसन, मंसूर, शम्सतबरेज, शंकराचार्य, लूथर, महाराजा रणजीत सिंह, नैपोलियन, गौतम बुद्ध, कारलायल, ईसामसीह, गुरुनानक, मीराबाई, ओशियो और टाल्सटाय को उद्धृत किया है। पूर्ण सिंह के मानसिक क्षितिज में पूरब-पश्चिम का भेद नहीं है। नये-पुराने का भेद नहीं है। जाति, क्षेत्र, सम्प्रदाय, धर्म, ऊँच-नीच, स्त्री-पुरुष का भेद नहीं है। उनकी दृष्टि में दुनिया अटल आध्यात्मिक नियमों पर खड़ी है। उन्हें जहाँ कहीं इस

आध्यात्मिक चेतना की झलक मिलती थी, उनका सर श्रद्धा से झुक जाता था। वे सृष्टि के कण-कण में ईश्वरीय सत्ता का आभास पाते थे। वे सच्चे रहस्यदर्शी थे। उस समय इतना बड़ा मन, इतना विशाल हृदय और इतनी व्यापक सात्विक दृष्टि लेकर कोई साहित्यकार हिन्दी के क्षेत्र में अवतरित नहीं हुआ था।

द्विवेदी-युग के बाद हिन्दी-साहित्य में 'छायावाद-रहस्यवाद' का युग आया। यह युग गाँधी का था। साहित्य पर भी उनकी छाप थी। गाँधी के साथ 'रवीन्द्र' भी हिन्दी-साहित्य-चेतना को प्रभावित कर रहे थे। स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव लेकर 'निराला' हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में आये थे। पंत पर अंग्रेज़ी के स्वच्छन्दतावादी कवियों, बँगला के रवीन्द्रनाथ टैगोर और संस्कृत के कालिदास का प्रभाव था। 1931 ई. तक 'छायावाद' की शिखर-रचनाओं का प्रकाशन नहीं हुआ था। उल्लेखनीय रचनाओं में 'पंत' का *पल्लव* (1928 ई.) 'निराला' की *अनामिका* (1923 ई.) और *परिमल* (1930 ई.) 'प्रसाद' का *आँसू* (1925 ई.) और महादेवी का *नीहार* (1930 ई.) प्रकाशित हो चुके थे। 'छायावाद' के उपर्युक्त सभी कवियों पर किसी-न-किसी रूप में आध्यात्मिकता का रंग था किन्तु पूर्ण सिंह की विश्वदृष्टि इनसे कुछ अलग क़िस्म की थी। सहानुभूति के विस्तार और संवेदना के विकास की दृष्टि में 'निराला' ही उनके निकट पहुँचते हैं। यदि उन्होंने हिन्दी में कविताएँ लिखी होतीं तो निश्चय ही इस क्षेत्र में भी वे भाषा और भाव की नयी विभूति दे सके होते।

पंजाबी समाज में सुधार और जागरण की शुरुआत बाबा दयाल (1783-1855 ई.) के 'निरंकारी' आन्दोलन तथा बाबा राम सिंह (जन्म 1815 ई.) के धार्मिक-सामाजिक सुधारों के साथ ही राजनीतिक परिवर्तन की माँग को अपना उद्देश्य बनाकर किये जाने वाले आन्दोलन और 'आर्यसमाज' के सुधारवादी आन्दोलन के माध्यम से हो चुकी थी। बीसवीं शती के प्रथम चरण में 'सिंह सभा' की स्थापना के बाद शिक्षित सिख समुदाय में जागरण की लहर और तेज हुई। साहित्य के क्षेत्र में भी इस जागरण का आलोक फैला। भाई वीर सिंह (1872–1957 ई.) ने सिख युवकों को अपनी उपलब्धियों पर गर्व करना सिखाया। उनका पूरा साहित्य सिखों के त्याग, पौरुष, वीरता तथा उच्चतर जीवन-मूल्यों की प्रति समर्पण की भावना से ओत-प्रोत है।

भाई वीर सिंह पंजाबी पुनर्जागरण के अग्रदूत थे। उन्होंने अपनी आरम्भिक कृतियों में सिख जाति की शौर्य गाथा और सिख धर्म की नैतिक श्रेष्ठता को केन्द्र में रखा। उन्होंने पंजाबी में मुक्तकों के सफल प्रयोग किये। उन्होंने रुबाइयाँ

लिखीं और अध्यात्म-चेतना को कविता में रहस्यवादी रंग देकर व्यक्त किया। भाई वीर सिंह मुख्यतः सिख चेतना के रचनाकार थे। सन् 1912 ई. में इनके सम्पर्क में आने के बाद पूर्ण सिंह पंजावी भाषा और साहित्य के प्रति उन्मुख हुए। इरा समय तक पूर्ण सिंह अंग्रेज़ी के माध्यम से पशिचम और पूरब का वहुत सा साहित्य पढ़ चुके थे। वे विश्व के प्रमुख धर्मों की मूल भावनाओं से परिचित थे। सिख गुरुओं के साथ ही वे वुद्ध, ईसा और शंकराचार्य का भी अनुशीलन कर चुके थे। 1909 ई. से 1913 ई. तक लिखे गये उनके हिन्दी-निवन्ध इस बात का प्रमाण देते हैं कि वे एक विश्वचेतना के रचनाकार थे। उनकी कल्पना सार्वभौम, सर्वसमावेशी और उदात्त थी। प्रेम, सौन्दर्य, पवित्रता, करुणा, शील, औदार्य आदि गुणों में वे ईश्वरीय सत्ता का आभास पाते थे। इसी विश्व-दृष्टि के साथ उन्होंने पंजावी साहित्य में प्रवेश किया। उन्होंने भाई वीर सिंह की चुनी हुई कविताओं का अंग्रेज़ी में अनुवाद करके पशिचम जगत् को सिख धर्म की मानवतावादी भूमि से परिचित कराया। वास्तविकता यह है कि अपने समय में पूर्ण सिंह पंजावी साहित्य की स्थापित मर्यादाओं में पूरी तरह समा नहीं पाये थे। उनकी सिख-भावना विश्वात्मवादी थी। जिस काल और देश में वे अपनी उदात्त रहस्यवादी काव्य-चेतना के साथ पंजाव की धरती पर अवतरित हुए थे वह उनके व्यक्तित्व की विराटता को देखते हुए कुछ छोटा ही था। तात्पर्य यह है कि पूर्ण सिंह हिन्दी-पंजावी दोनों में अपने समय में अजनवी ही वने रहे। जब उन्हें पहचाना गया तव वे इस देश और काल की सीमाओं का बंधन तोड़कर अपने उस अलक्ष्य प्रियतम के साथ एकाकार हो चुके थे जिसकी झलक वे अणु-अणु में निरन्तर अनुभव किया करते थे।

2

जीवन-परिचय

पूर्ण सिंह का जन्म 17 फ़रवरी, 1881 में ऐबटाबाद के निकट सलहद (Salhad) नामक छोटे से गाँव में हुआ था। पहले यह गाँव पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में पड़ता था अब देश के विभाजन के वाद पश्चिमी पाकिस्तान में आ गया है। इनके पूर्वज जिला रावलपिण्डी की कहुटा तहसील के छोटे से गाँव डेरा खालसा के रहने वाले थे, जो सलहद में आकर बस गये थे। सलहद एक छोटी-सी पहाड़ी पर स्थित है जिसमें छोटे-छोटे जलाशय और झरने हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से यह गाँव बड़ा ही रमणीय और मनोरम है। इसी मुक्त वातावरण और नैसर्गिक सुषमा के बीच पूर्ण सिंह ने अपनी आँखें खोली थीं। उनका बचपन प्रकृति की गोद में ही व्यतीत हुआ था।

पूर्ण सिंह की माता का नाम परमा देवी था। वह एक धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं। गुरुवाणी में उनकी अगाध श्रद्धा थी। पूर्ण सिंह के पिता सरदार कर्तार सिंह एक छोटे से रेवेन्यू अधिकारी थे। वे प्रायः घर से बाहर रहते थे। उनका काम था गाँव-गाँव घूमकर खेतों की पैमाइश करना और फसलों की जाँच करके उनकी मालगुजारी तय करना। जब कभी लम्बे अंतराल के बाद वे घर आते थे तो उत्सव का माहौल छा जाता था। पूर्ण सिंह के शब्दों में–"उनके आने पर हम बच्चे प्रसन्नता के मारे इधर-उधर चिल्लाते हुए उचकते फिरते थे, बाबू जी आ गये ! बाबू जी आ गये ! हम लोग उनसे गले मिलते उनकी सीधी-सादी घोड़ी की गर्दन से चिपक जाते और इस प्रकार घर आने का उनका राजसी स्वागत करते थे।"[1]

---

1. *सिस्टर्स आव द स्पिनिंग व्हील* की भूमिका में उद्धृत पूर्ण सिंह के संक्षिप्त आत्मचरित से।

पूर्ण सिंह को अपनी माता का भरपूर प्यार मिला। पूर्ण सिंह बचपन से ही अत्यन्त भावुक और संवेदनशील थे। प्रकृति के सौन्दर्य को देखकर वे विभोर होकर तन्मय हो जाते थे। वही तन्मयता गुरुवाणी का पाठ करती हुई अपनी माता में देखते थे। नैसर्गिक सौन्दर्य और आध्यात्मिक पवित्रता दोनों ने पूर्ण सिंह के बाल मन पर गहरा प्रभाव डाला। यह प्रभाव आगे चलकर उदात्त सौन्दर्य-चेतना के रूप में उनकी रचनाओं में व्यक्त हुआ।

पूर्ण सिंह की आरम्भिक शिक्षा गाँव में ही सम्पन्न हुई। भाई बेला सिंह ने गुरुद्वारे में उन्हें गुरुमुखी पढ़ाया और एक मौलवी साहब ने मकतब में उर्दू सिखाया। 1895 में उन्होंने म्यूनिसिपिल बोर्ड हाईस्कूल हरिपुर से मिडिल परीक्षा पास की। मिडिल में उनका एक विषय फ़ारसी भी था। 1897 में उन्होंने रावलपिण्डी के मिशन स्कूल से पंजाब यूनिवर्सिटी की मैट्रीकुलेशन परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके बाद उन्होंने अपना नाम डी. ए. वी. कालेज लाहौर में लिखाया। 1899 में उन्होंने इंगलिश, मैथमेटिक्स, संस्कृत और केमिस्ट्री के साथ एफ. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। आगे पढ़ने के लिए उन्होंने इसी कालेज में बी. ए. कक्षा में नाम लिखाया। लाहौर में 'अहलूवालिया खालसा बिरादरी' नामक सिखों का एक संगठन था। 'बिरादरी' मेधावी छात्रों को विदेशों में उच्चतर अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति प्रदान करती थी। 'बिरादरी' के सदस्य छात्र पूर्ण सिंह की प्रतिभा और वक्तृत्व-कला से विशेष प्रभावित थे। अभी आपने बी. ए. में प्रवेश लिया ही था कि 'बिरादरी' ने जापान जाकर रसायनशास्त्र के उच्चतर अध्ययन के लिए आपको छात्रवृत्ति प्रदान कर दी।

सन् 1900 में आप जापान गये और वहाँ टोकियो की इम्पीरियल यूनिवर्सिटी में आपको औषध रसायन (Pharmacential Chemistry) के विशेष छात्र के रूप में प्रवेश मिल गया। जापान में रसायन विज्ञान के अध्ययन के साथ ही आपने वहाँ कला-संस्कृति और अध्यात्म में भी गहरी रुचि दिखायी। जापान की प्राकृतिक सुषमा देखकर आपको अपने गाँव की याद आ जाती थी। जापान के लोगों की सरलता, निश्छलता, स्नेहशीलता और कर्ममय जीवन के प्रति समर्पण ने आपको मुग्ध कर लिया। टोकियो में 'इण्डो जापानी क्लब' नाम की एक संस्था थी। इसमें भारतीय और जापानी छात्र रहते थे। पूर्ण सिंह इस क्लब के मंत्री चुन लिये गये। उन्होंने जापानी भाषा पर अच्छा अधिकार कर लिया और जर्मन भी सीखी। प्रसिद्ध जापानी भिक्षु विद्वान्, ओकाकुरा (Okakura) से आप इतने प्रभावित हुए कि बौद्ध भिक्षु हो गये।

सितम्बर 1902 में एक ग़लत सूचना के आधार पर कि जापान में भी उसी प्रकार का सर्वधर्म सम्मेलन होने वाला है जैसा 1893 में अमेरिका में हुआ था, स्वामी रामतीर्थ अपने शिष्य स्वामी नारायण के साथ जापान पहुँचे। वहाँ भारतीय विद्यार्थियों से मिलने के लिए वे 'इण्डो जपानी क्लब' भी गये। यहीं उनकी भेंट पूर्ण सिंह से हुई। पूर्ण सिंह ने इस मिलन का बड़ा ही भावपूर्ण वर्णन किया है—"ज्यों ही य्राकोहामा के एक आदमी ने क्लब में आकर दो भगवा वस्त्र धारी संन्यासियों का परिचय कराया, चारों ओर प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। उनमें बड़े स्वामी के मुख से पक्षियों के कलरव की तरह ओउम्-ओउम् की मधुर ध्वनि स्फुटित हो रही थी। उस ध्वनि में जादू जैसा सम्मोहन था। स्वामी राम के साथ उनके शिष्य नारायण स्वामी भी थे। यद्यपि मैं उनमें से किसी से परिचित नहीं था। फिर भी उन्हें देखकर उत्साह से पागल हो गया था। उनकी भाषा कुछ ऐसी रहस्यमय और अपरिचित थी और उनके मुख-मण्डल पर कुछ ऐसा अलौकिक आध्यात्मिक तेज था कि चुपचाप उनकी आज्ञा पालन के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकता था। छोटे स्वामी ने मुझसे पूछा—आप किस देश के निवासी हैं? मेरी आँखों में आँसू आ गये। मधुर और आत्मीय स्वर में मैंने उत्तर दिया—सारा संसार मेरा घर है। बड़े स्वामी ने मेरी आँखों की ओर देखा और बोले—'भलाई करना मेरा धर्म है।' बस, इन्हीं दो वाक्यों से हम एक दूसरे से परिचित हुए।[1] इस भेंट के बाद पूर्ण सिंह स्वामी जी के अनन्य भक्त हो गये। उसी दिन पूर्ण सिंह का बुद्धिस्ट यूनिवर्सिटी में भाषण होने वाला था। स्वामी जी भी पूर्ण सिंह के आग्रह पर उनके साथ बुद्धिष्ट यूनिवर्सिटी गये। वहाँ पहले पूर्ण सिंह का भाषण हुआ। उन्होंने भाषण की कोई तैयारी नहीं की थी। फिर भी उनके भाषण से श्रोतागण मुग्ध हो गये। इसके बाद स्वामी राम तीर्थ का भाषण हुआ। भाषण में इतना ओज और प्रगल्भता थी कि लगता था कि अग्नि के स्फुल्लिंग बिखर रहे हों। उसी मंच पर जापान के कार्लायल श्री कुजो युचिमुरा ने भी भाषण दिया लेकिन स्वामी राम के भाषण के बाद उनका वक्तव्य फीका पड़ गया।

स्वामी राम तीर्थ का कितना गहरा प्रभाव पूर्ण सिंह पर पड़ा था इसका अनुमान उन्हीं के निम्नलिखित उद्गार से लगाया जा सकता है—"मेरे हृदय के अन्तस्थल में इतना आन्दोलन मचा था कि मैं उनकी बातों को ध्यानपूर्वक सुन ही नहीं पा रहा था। मैं इधर-उधर दौड़ रहा था। मैं कभी यों ही बिना प्रयोजन

---

1. *स्टोरी आफ़ स्वामी राम*, पृ. 117, संस्करण, 1935

उनके कमरे में जाता और फिर बाहर आ जाता। न तो मैं देर तक उनके निकट रह सकता था न उनसे अलग रह पाता था। मैं किसी प्रकार अपने को उनके समीप जाने से रोक नहीं पाता था। मैं उनसे प्रेम करने लगा। वे मेरे हृदय में बहुत गहरे प्रवेश कर गये थे। सच तो यह है कि यदि मैं लड़की होता तो उन्हें पाने के लिए अपना सर्वस्व निछावर कर देता। एक बात सुनिश्चित है कि वे जो कुछ कह रहे थे उसका एक शब्द भी मैं नहीं सुन पा रहा था फिर भी यह आश्चर्य की बात है उनके मुख से निकला प्रत्येक शब्द मेरे हृदय में अंकित हो जाता था और इस समय भी मैं जो कुछ लिख रहा हूँ उसका एक-एक अक्षर सत्य है।"[1] इसके बाद पूर्ण सिंह स्वामी रामतीर्थ के शिष्य हो गये। उन्होंने संन्यासी का वेश धारण कर लिया। जापान में 15 दिन रहने के बाद स्वामी राम तीर्थ तो अमेरिका चले गये। किन्तु पूर्ण सिंह का मन पढ़ाई से उचट गया। वे लगभग दो महीना वहाँ रहने के बाद अध्ययन से विरक्त होकर संन्यासी वेश में ही भारत लौट आए।

जापान में रहते हुए पूर्ण सिंह स्वतंत्रता का मूल्य पहचान चुके थे। जापान एक स्वतंत्र देश था। वहाँ के वातावरण में अपूर्व उल्लास तरंगित होता रहता था। स्वामी रामतीर्थ के जिस वेदान्त दर्शन ने पूर्ण सिंह को प्रभावित किया था, वह जापान के जीवन में मूर्त हो रहा था। वहाँ के लोगों के विषय में स्वामी राम ने कहा था—"राम को यहाँ के कर्मठ मनुष्यों को कोई शिक्षा नहीं देनी है। यहाँ सब के सब पक्के वेदान्ती हैं।" जापान उस समय एशिया के लिए प्रेरणा-स्रोत बन गया था। कलकत्ता आकर उन्होंने भारत की स्वतंत्रता के समर्थन में एक ओजस्वी भाषण दिया। उस समय वे संन्यासी वेश में थे। भाषण को आपत्ति जनक मानकर उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया। बाद में यह ज्ञात होने पर कि उनका किसी राजनीतिक दल से कोई सम्बन्ध नहीं है, वे छोड़ दिये गये।[2]

पूर्ण सिंह के भारत लौटने की सूचना किसी तरह उनके माता-पिता को मिल गयी। वे लोग उनसे मिलने के लिए रावलपिण्डी से चलकर कलकत्ता पहुँचे। उन्हें पूर्ण सिंह का निश्चित पता मालूम नहीं था। यह उनकी माता के सच्चे प्रेम का ही प्रभाव था कि कलकत्ता जैसे महानगर में भी वह अपने संन्यासी पुत्र से मिलने में सफल हो गईं। माता के बहुत समझाने-बुझाने पर पूर्ण सिंह घर लौटने

---

1. *स्टोरी आफ़ स्वामी राम*, पृ. 118, संस्करण, 1935
2. *पूर्ण सिंह*, रमिन्दर सिंह, पृ. 5

को राज़ी हो गये। पूर्ण सिंह की दो बहनें थी—लाजन और गंगा। भाई को सहसा सामने देखकर वे दोनों उनसे चिपट कर रोने लगीं। किन्तु संन्यासी पूर्ण सिंह के नयनों की गंगा सूख गयी थी। इस बात का उन्हें आजीवन पश्चात्ताप बना रहा कि बहनों से मिलने पर उनकी आँखों में आँसू क्यों नहीं आए ? पूर्ण सिंह की बहन गंगा मृत्युशय्या पर थी। उसे देखकर पूर्ण सिंह का संन्यासी मन विचलित हो गया। उनकी सुप्त भावनाएँ जाग उठीं। उन्होंने बहन से उसकी अन्तिम इच्छा जाननी चाही। बहन ने उनसे उसी लड़की से ब्याह करने का बचन ले लिया जिससे उनकी सगाई जापान जाने से पहले हो चुकी थी।

5 मार्च, 1904 ई. को पूर्ण सिंह का ब्याह माया देवी से हुआ। उन्होंने पहले ही दिन माया देवी से वचन ले लिया कि उन्हें भोग विलास से अलग रहकर सहज जीवन व्यतीत करना होगा। माया पूर्ण सिंह ने सती नारी की भाँति इस वचन का निर्वाह किया। विवाह के बाद पूर्ण सिंह पत्नी के साथ लाहौर चले आए। यहाँ वे अनारकली मुहल्ले की एक हवेली में रहने लगे। लाहौर में उनके एक व्यवसायी मित्र और कुछ सम्बन्धियों ने उन्हें एक सुगन्धित तेलों की मिल खोलने की राय दी। पूर्ण सिंह राज़ी हो गये। उन्होंने आवश्यक उपकरण बनाकर तेल का उत्पादन करके दिखा दिया। किन्तु जब मिल चालू करने के लिए पूँजी लगाने की बात आई तो मित्रों ने हाथ खींच लिया और यह योजना खटाई में पड़ गयी।

अगस्त 1904 में पूर्ण सिंह 'विक्टोरिया डायमण्ड जुबिली हिन्दू टेक्निकल इन्स्टीट्यूट लाहौर' के प्रिंसिपल नियुक्त हुए। दो वर्षों तक पूर्ण सिंह ने व्यवस्थित गाहस्थ्य जीवन व्यतीत किया। इस बीच माया पूर्ण सिंह ने प्रख्यात संगीतज्ञ विष्णु दिगम्बर से संगीत सीखा।[1] पूर्ण सिंह ने *द थंडरिंग डान* पत्रिका का पुनः प्रकाशन आरम्भ किया। यह पत्रिका अपने जापान प्रवास-काल में वे निकाल चुके थे। पूर्ण सिंह अत्यन्त सहृदय थे। किसी का कष्ट वे नहीं देख सकते थे। सदैव सबकी सहायता के लिए तैयार रहते थे। एक बार उनके विद्यालय के एक छात्र को टाइफ़ाइड हो गया। पूर्ण सिंह उसे अपने घर उठा लाये। छात्र के दो सहपाठी खुदाबाद और हरदयाल प्रायः उसे देखने के लिए पूर्ण सिंह के घर आया करते थे। इन दोनों से पूर्ण सिंह की मैत्री हो गयी। यह मैत्री आजीवन बनी रही। 1905 में वाराणसी में वैज्ञानिकों की एक सभा का आयोजन किया गया था। पूर्ण सिंह भी आमन्त्रित थे। पूर्ण सिंह की कठिनाई यह थी कि उनके पास न तो बढ़िया

---

1. *पूर्ण सिंह : ए लाइफ़ स्केच* माया देवी पूर्ण सिंह, पृ. 38, 1993

सूट था न जूते। खुदाबाद चाहते थे कि पूर्ण सिंह सभा में अवश्य सम्मिलित हों। अन्ततः खुदाबाद का ही सूट और उन्हीं के जूते पहनकर पूर्ण सिंह वाराणसी आए।[1] उस समय देश के औद्योगिक विकास के लिए पूर्ण सिंह के पास तकनीकी योजनाएँ थीं। उन्होंने वाराणसी में जो शोध-पत्र पढ़ा उसकी बड़ी प्रशंसा हुई। पूर्ण सिंह देश के प्रथम कोटि के वैज्ञानिकों की नज़रों में चढ़ गये।

सन् 1905 में ही पूर्ण सिंह अपनी पत्नी माया पूर्ण सिंह के साथ देहरादून गये। वहाँ स्वामी रामतीर्थ के सभी शिष्यों को एकत्र होना था। स्वामी जी टिहरी जा रहे थे। उनके शिष्य उन्हें विदा देने के लिए एकत्र हुए थे। इस अवसर पर स्वामी जी ने अपने शिष्यों से कहा था—''आज से पूर्ण सिंह में ही मेरी छाया देखना।'' अपने एक प्रिय शिष्य बाबू ज्योतिस्वरूप से उन्होंने कहा—''पूर्ण सिंह की जितनी सम्भव हो सहायता करना, सरकार उनके लिए कुछ करने नहीं जा रही है।''

पूर्ण सिंह लाहौर में मात्र दो साल ही रह सके। इन दो सालों में उन्होंने वहाँ के बुद्धिजीवियों एवं समाजसेवियों से अच्छा ख़ासा सम्बन्ध बना लिया था। उनके मित्रों में प्रख्यात शायर मुहम्मद इकबाल और समाजसेवी हरदयाल भी थे। 1904 में काँगड़ा के ध्वंसकारी भूकम्प-पीड़ितों की सहायता में पूर्ण सिंह ने पूरा सहयोग दिया था। इस समय उनके मन में समाज-सेवा के लिए अपूर्व उत्साह था। सन् 1906 में बाबू ज्योतिस्वरूप ने पूर्ण सिंह के सामने देहरादून से लगभग 6 मील दूर दोईवाला (Doiwala) के निकट कुआँवाला (Kuanawala) में एक साबुन की फैक्टरी खोलने का प्रस्ताव रखा। नवम्बर 1906 में पूर्ण सिंह 'विक्टोरिया डायमंड जुबिली हिन्दू इन्स्टीट्यूट, लाहौर' से त्यागपत्र देकर दोईवाला और फिर देहरादून आ गये। साबुन फैक्टरी की योजना भी सफल नहीं हो पायी। इसी बीच एक ऐसी घटना हो गयी जिसने पूर्ण सिंह को भीतर से तोड़कर रख दिया। हुआ यह कि 1906 में टिहरी में स्वामी रामतीर्थ की गंगा में डूब जाने से मृत्यु हो गयी। समाचार मिलते ही पूर्ण सिंह, माया पूर्ण सिंह के साथ वहाँ पहुँचे। तीन दिनों के हर सम्भव प्रयत्न के बावजूद स्वामी जी का शव नहीं मिल रहा था। वहाँ पहुँचते ही पूर्ण सिंह ने चिल्लाकर कहा—''ओ स्वामी जी, यदि आपका शरीर जल की सतह पर नहीं आता है तो मैं भी गंगा में कूद कर प्राण दे दूँगा।'' सभी लोग घबरा गये। स्वामी जी के शिष्य नारायण स्वामी ने पूर्ण सिंह

---

1. *पूर्ण सिंह ए लाइफ़ स्केच*, माया देवी पूर्ण सिंह, पृ. 33, 1993

को अपनी बाँहों में ले लिया। लेकिन तभी लोगों ने आश्चर्य से देखा कि स्वामी राम का मृत शरीर जल की सतह पर तैर रहा है।[1] स्वामी जी के दिवंगत हो जाने पर पूर्ण सिंह उदास रहने लगे। लगता था, उनके जीवन का प्रेरणा-स्रोत ही सूख गया है।

1907 में जब सरकार ने देहरादून में 'इम्पीरियल फ़ारेस्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट' की स्थापना की तो पूर्ण सिंह को केमिकल एडवाइजर के पद पर नियुक्त कर लिया गया। 1918 ई. तक पूर्ण सिंह इस पद पर कार्य करते रहे। 1907 से 1912 तक पूर्ण सिंह अस्थिर चित्त से अपने दायित्व का निर्वाह करते रहे। इस बीच स्वामी रामतीर्थ के शिष्य संन्यासी उनसे मिलने आते रहे। संन्यासियों के अतिरिक्त उनसे मिलने वालों में श्री कुलकर्णी, मास्टर मीरचन्द, मिस्टर जे. एम. चटर्जी, श्री रासबिहारी घोष आदि प्रमुख थे। रासबिहारी घोष तो उनकी प्रयोगशाला में काम ही करते थे। उन दिनों देश में क्रान्तिकारियों के कार्य-कलाप तेजी पर थे। बंगाल से पंजाब तक उनका जाल फैला था। पूर्ण सिंह का व्यक्तित्व क्रान्तिकारियों को आकृष्ट करता था किन्तु वे उन्हें विश्वास में नहीं लेते थे। कारण यह था कि पूर्ण सिंह कोई बात छिपा नहीं पाते थे। यह होने पर भी लार्ड हार्डिंज बम काण्ड की चपेट में वे आ ही गये। इस काण्ड के एक अभियुक्त रासबिहारी घोष थे। रिसर्च इन्स्टीट्यूट की प्रयोगशाला में पिकरिक एसिड (Picric acid) कम पाया गया था। पुलिस को सन्देह था कि नयी राजधानी दिल्ली में प्रवेश करते समय लार्ड हार्डिंज पर जो बम फेंका गया था।[2] उसके बनाने में जिस एसिड का प्रयोग किया गया था, वह इन्स्टीट्यूट की प्रयोगशाला से ही चुराया गया था। पुलिस का सन्देह निराधार नहीं था।

पूर्ण सिंह षड्यंत्र में शामिल भले ही न रहे हों रासबिहारी घोष को जापान भगाने में उनकी भूमिका प्रमुख थी। इस काण्ड के दूसरे अभियुक्त मास्टर मीर चन्द पूर्ण सिंह के मित्र थे। न्यायालय में पेश होने पर पूर्ण सिंह ने मित्रों की सलाह पर मास्टर मीरचन्द से अपने सम्बन्धों की बात नकार दी और वे छोड़ दिये गये।

सन् 1912 में चीफ़ खालसा दीवान द्वारा सियालकोट में 'सिख एजूकेशनल कान्फ्रेंस' का आयोजन किया गया। इसमें अनेक बुद्धिजीवी, शिक्षाविद्, कवि और

---

1. *पूर्ण सिंह दी जीवनी ते कविता,* माया पूर्ण सिंह।
2. यह काण्ड 1912 ई. में उस समय हुआ था कि जब हार्डिंज कलकत्ता के बाद घोषित नई राजधानी दिल्ली में औपचारिक रीति से प्रवेश कर रहा था।

समाजसुधारक सम्मिलित हुए। अध्यापक पूर्ण सिंह ने भी इस कान्फ्रेंस में भाग लिया। यहीं उनकी भेंट पंजावी के प्रख्यात रहस्यवादी कवि भाई वीर सिंह से हुई। इस भेंट ने उन्हें जगा दिया। स्वामी रामतीर्थ के दिवंगत होने से उन्हें जो मानसिक आघात लगा था, उसकी क्षतिपूर्ति हो गयी। सिख गुरुओं के प्रति उनके मन में अगाध श्रद्धा का उदय हुआ। वे सक्रिय हो उठे। 1912 से 1918 के बीच अपने वैज्ञानिक शोध-कार्य में लगे रहने के बावजूद पूर्ण सिंह ने हिन्दी में चार निबन्ध लिखे। गुरु गोविन्द सिंह और गुरु नानक साहिब की जीवनियाँ लिखीं। इमर्सन और कार्लायल के निबन्धों का पंजाबी में अनुवाद किया और अपनी प्रसिद्ध कविता पुस्तक *द सिस्टर्स आव द स्पिनिंग हील* का प्रकाशन कराया।

सन् 1916 में इण्डियन फ़ारेस्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट देहरादून, में एक अंग्रेज़ केमिस्ट की नियुक्ति हुई। पूर्ण सिंह को उसके अधीन कार्य करने को कहा गया। पूर्ण सिंह के अनुभव और योग्यता से नव नियुक्त अंग्रेज़ केमिस्ट की कोई तुलना नहीं थी। पूर्ण सिंह को यह बात खल गयी कि मात्र अंग्रेज़ होने के नाते एक युवा और अनुभवहीन व्यक्ति को वरीयता देकर सर पर बैठाया जा रहा है। उन्होंने अपना त्यागपत्र भेज दिया। इन्स्टीट्यूट के अध्यक्ष मिस्टर मरसर (Mercer) पूर्ण सिंह की योग्यता से प्रभावित थे। उन्होंने उन्हें राज़ी करने की बहुत कोशिश की। दो वर्षों तक पत्र-व्यवहार होता रहा। अंत में पूर्ण सिंह को गठिया और अल्बूमिनोरिया (Albumeneria) का रोगी करार करके पेंशन दे दी गयी।

औद्योगिक रसायनविद के रूप में पूर्ण सिंह प्रख्यात हो चुके थे। 1920 में ग्वालियर के महाराज ने उन्हें अपने यहाँ सुगंधित तेलों तथा अन्य घरेलू उत्पादों के लिए एक कारखाना स्थापित करने के उद्देश्य से आमंत्रित किया। चार वर्षों के भीतर ही पूर्ण सिंह ने सिन्धिया केमिकल वर्क्स की स्थापना करके उत्पादन आरम्भ कर दिया। कारख़ाने की स्थापना में होने वाले ख़र्च को लेकर दरबारियों ने महाराज से इनकी शिकायत कर दी। महाराज पूर्ण सिंह का सम्मान करते थे। उन्होंने दबी ज़बान से ही ख़र्च के बारे में पूछा। पूर्ण सिंह आवेश में आ गये। उन्होंने भरे दरबार में कहा—"आप राजाओं के केवल कान होते हैं, चीज़ों को देखने के लिए आँख नहीं होती।" यह कहकर उन्होंने त्यागपत्र दे दिया और सब कुछ छोड़कर केवल अपनी रचनाओं की हस्तलिपियाँ साथ लेकर सीधे स्टेशन आये और जो पहली ट्रेन मिली उससे देहरादून लौट आये।[1]

---

1. *पूर्ण सिंह, ए लाइफ़ स्केच*, माया देवी पूर्ण सिंह, पृ. 70

ग्वालियर में पूर्ण सिंह को सभी तरह की सुविधाएँ प्राप्त थीं। 1920 से 24 तक उनकी रचनात्मक ऊर्जा अपने शिखर पर थी। इन्हीं चार वर्षों में उन्होंने *द बुक आव द टेन मास्टर्स, खुल्हे मैदान, खुल्हे घुंड, द स्पिरिट आव ओरियण्टल पोयट्री, द स्टोरी आफ़ स्वामी राम, सेविन बास्केट्स आव प्रोज़ पोयम्स* जैसी उच्चस्तरीय कृतियों की रचना की।

ग्वालियर से देहरादून लौटने के बाद उनके प्रशंसक और मित्र सर सुन्दर सिंह मजीठिया ने उनसे सरदार नगर स्थित अपनी शुगर फ़ैक्ट्री में परामर्शदाता और केमिस्ट के पद पर कार्य करने की प्रार्थना की। पूर्ण सिंह सरदार नगर गये। वहाँ भी उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया और चीनी-उत्पादन की रासायनिक प्रक्रिया में कुछ महत्त्वपूर्ण सुधार किये। सरदार नगर में पूर्ण सिंह को सर सुन्दर सिंह मजीठिया के पुत्रों द्वारा विदेशियों को अकारण दी जाने वाली वरीयता खली और वे पुनः देहरादून लौट आए।

पूर्ण सिंह के शुभचिन्तकों और मित्रों—सर जफ़रुल्लाह, सर जोगेन्द्र सिंह, सर सुन्दर सिंह मजीठिया आदि—की पंजाब सरकार में अच्छी पहुँच थी। इन लोगों की सिफ़ारिश पर पंजाब सरकार ने पूर्ण सिंह को शेखूपुरा ज़िले में 400 एकड़ ज़मीन पट्टे पर रोशा घास उद्योग विकसित करने के लिए दे दी। यह इलाक़ा जंगली क़िस्म के लोगों द्वारा आबाद था। इन जंगलियों में भी पूर्ण सिंह बहुत लोकप्रिय हो गये। वे लोग इन्हें अपना पीर समझते थे। इस जंगली इलाक़े में भी पूर्ण सिंह की रचनाशीलता में कोई कमी नहीं आई। यहाँ रहते हुए उन्होंने अपनी आत्मकथा *आन पाथ आव लाइफ़* और अपनी श्रेष्ठ काव्य कृति *खुले आसमानी रंग* लिखी। यहीं उन्होंने टॉल्स्टाय के प्रसिद्ध उपन्यास रिसेरेक्शन (Resurection) का *मोइयाँ द जाग* शीर्षक से दो भागों में पंजाबी भाषा में अनुवाद किया। *द स्पिरिट आफ़ द सिख्स, खुल्हे लेख, द स्पिरिट बार्न पीपुल* और *वाल्ट ह्विटमैन एण्ड द सिख इन्सिपिरेशन* जैसी रचनाएँ भी यहीं लिखी गईं। यहाँ भी पूर्ण सिंह के भाग्य ने उनका साथ नहीं दिया। 1928 ई. में रावी की भीषण बाढ़ में इनका सारा फ़ार्म जलमग्न हो गया। तेल निकालने वाली रोशा घास बाढ़ में बह गई। सात फीट गहरे जल-प्रवाह में सब कुछ बहा जा रहा था और पूर्ण सिंह गा रहे थे—

भला हुआ मेरा चरखा टूटा
जिंद अजालों छूटी।[1]

---

1. *पूर्ण सिंह*, अध्यापक हीरा सिंह द्वारा प्रकाशित, द यूनिवर्सिटी सिख एसोसियेशन, लाहौर, पृ. 4, 1940

आप कल्पना कर सकते हैं कि इस गीत में कहीं बहुत गहरे दर्द भी छुपा है। इस उद्योग में पूर्ण सिंह ने अपनी सारी पूँजी लगा दी थी। जीवन में व्यवस्थित ढंग से कुछ करने का यह उनका अन्तिम प्रयास था किन्तु नियति को कुछ और ही मंजूर था। नियति जीत गयी और पूर्ण सिंह हार गये। अब उनके मित्र भी उनसे कतराने लगे थे। उन्हें इसका सम्पत्ति-नाश से अधिक दुख था।

पूर्ण सिंह परिचित-अपरिचित सभी से बड़ी आत्मीयता से गले लगकर मिलते थे। 1930 में एक परिचित से उन्हें तपेदिक की छूत लग गयी। यह जानते हुए कि उसे तपेदिक है, वे उससे गले लगकर मिले, परिणामस्वरूप तपेदिक के कीटाणु उनमें भी संक्रमित हो गये। बीमार और निराश पूर्ण सिंह अपने पुराने निवास देहरादून लौट आए। यह नवम्बर 1930 की घटना है। देहरादून में उनके पुराने मित्र खुदाबाद, जो अब डॉ. खुदाबाद थे, और डॉ. बलवीर सिंह ने उनकी बड़ी सेवा की। सभी प्रकार की चिकित्सा-सुविधा के बावजूद उनका क्षय रोग बढ़ता गया। अन्ततः 31 मार्च, 1931 को पंजाब का अपने समय का सबसे प्रतिभावान वैज्ञानिक और संन्यासी कवि सदा के लिए निद्रा की शान्त गोद में सो गया।

हिन्दी के दो महान् लेखकों से पूर्ण सिंह का गहरा सम्बन्ध था। एक थे—श्री काशीप्रसाद जायसवाल और दूसरे थे श्री पद्म सिंह शर्मा। दोनों ही उनके प्रशंसक थे। उनकी मृत्यु के बाद मई 1931 के *विशाल भारत* में पद्मसिंह शर्मा ने उनके विषय में संस्मरणात्मक लेख लिखा था। पद्मसिंह जी को उनके अचानक दिवंगत हो जाने का गहरा अफ़सोस था। उन्होंने लिखा था—"अध्यापक पूर्ण सिंह बहुत दिनों से चुप थे और अचानक चुपचाप ही चल दिये। उनके पुराने मित्रों को मालूम भी न हुआ। अफ़सोस, प्यारे पूर्ण सिंह की कहानी रह जायेगी।"

श्री काशीप्रसाद जायसवाल ने सितम्बर 1931 के *विशाल भारत* में लिखा था—"इस वर्ष मार्च मास के अन्तिम दिन सिख धर्म के रहस्यवादी कवि पूर्ण सिंह का, देहरादून में उनके घर पर देहावसान हो गया। पूर्ण सिंह पर केवल सिख धर्म का ही दावा नहीं है, वे हमारे साहित्य के भी धनी थे। वे कवि थे, परन्तु उन्होंने अपने विचार प्रकट करने के लिए अंग्रेज़ी भाषा को अपनाया था। उनका स्टाइल, उनकी स्वच्छन्दता, उनका बल और उनकी रहस्ममयी गरिमा श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर से बहुत कुछ मिलती-जुलती थी।"

वस्तुतः पूर्ण सिंह जी की प्रतिभा को हिन्दी के समीक्षकों ने उनके जीवन-काल में ही पहचान लिया था। 1929 में हिन्दी शब्दसागर की भूमिका के रूप में हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखते समय आचार्य शुक्ल ने मात्र तीन

निबन्धों के आधार पर उन्हें पूरा सम्मान देते हुए लिखा था—"सरस्वती के पुराने पाठकों में से बहुतों को अध्यापक पूर्ण सिंह के लेखों का स्मरण होगा। उनके तीन-चार निबन्ध ही उक्त पत्रिका में निकले, पर उन्होंने दिखा दिया कि विचारों और भावों को एक अनूठे ढंग से व्यंजित' करने वाली एक नई शैली का अवलंबन किसे कहते हैं, उनकी लाक्षणिकता हिन्दी गद्य-साहित्य में एक नई चीज़ थी।" इसमें सन्देह नहीं कि अध्यापक पूर्ण सिंह केवल पंजाबी के ही नहीं अंग्रेज़ी और हिन्दी के भी अप्रतिम रचनाकार थे। उनके निधन से साहित्य जगत् की अपूरणीय क्षति हुई। पंजाबी साहित्य में उनका वही स्थान है जो बाङ्ला साहित्य में रवीन्द्रनाथ ठाकुर और उर्दू में इकबाल का।

नोट : *हिन्दी साहित्य का इतिहास* के 1941 के संस्करण में आचार्य शुक्ल ने व्यंजित को हटाकर 'मिश्रित' कर दिया है।

3

स्वभाव और व्यक्तित्व

पूर्ण सिंह बचपन से ही अत्यन्त संवेदनशील, भावुक, एकान्तप्रिय और सौन्दर्य-प्रेमी थे। सुन्दर प्राकृतिक उपादानों—झरना, पहाड़, वृक्ष, झाड़ी, चिड़िया, फूल—को देखकर वे तन्मय हो जाते थे। वे अपने को भी उन्हीं में से एक अनुभव करने लगते थे। माता के निकट रहने के कारण वे आदर्शवादी, सत्यनिष्ठ और आस्थावान् भी बन गये थे। दया, उदारता, परोपकार और त्याग की वृत्तियाँ माँ से संक्रमित होकर उनमें भी चली आई थीं। उनका स्वभाव संकोची था। लाहौर आकर भी उनका गाँव का मन नागरिक टीम-टाम को स्वीकार नहीं कर सका। उनके मित्र डॉ. बलवीर सिंह उनके स्वभाव का चित्रण करते हुए कहते हैं—"एक सीमा तक वे आदर्शवादी थे। स्वस्थ प्रकट उल्लास के स्थान पर उनमें एक प्रकार की चन्द्रमा जैसी शान्त, शीतल प्रसन्नता की झलक देखी जा सकती थी। शारीरिक दृष्टि से वे सुन्दर थे। प्रकृति से चंचल और मन से अस्थिर थे। वे किसी भी भौतिक लाभ को त्यागने के लिए तत्पर रहते थे लेकिन उनमें यश की बेहद चाह थी।"[1] पूर्ण सिंह की वाक्शक्ति अद्भुत थी। विविध विषयों पर बात करने की क्षमता के साथ ही वे एक सफल वक्ता भी थे। जापान जाने के पहले इन गुणों के साथ ही उन्होंने एक प्रतिभा-सम्पन्न छात्र के रूप में अपनी पहचान बना ली थी।

जापान जाने के बाद वहाँ उनका प्रकृति और सौन्दर्य प्रेम और गहरा हो गया। जापान में उन्होंने प्रकृति के साथ ही मानवीय सौन्दर्य की दिव्यता के भी

---

1. *डॉ. बलवीर सिंह स्मृति ग्रंथ*, दिसम्बर, 1976

दर्शन किये। उन्होंने अनुभव किया कि उल्लासपूर्ण कर्मठ जीवन में एक अद्‌भुत गति और लय होती है और मौन संगीत एवं सर्जनात्मक ऊर्जा का सौन्दर्य होता है। 'इण्डो-जापानी-क्लब' के मंत्री होने के बाद उनकी वक्तृत्व-शक्ति और चमक उठी। उनके वक्तव्यों में तर्क-पुष्ट सुविचारित निष्कर्ष नहीं होते थे। वे किसी विषय पर अपनी भावात्मक प्रतिक्रिया तरंग-संकुल जल-प्रवाह की भाँति पूरे आवेग में उद्धरण-बहुल शैली में व्यक्त करके श्रोताओं को मुग्ध कर लेते थे।

जापान में रहते हुए उन पर वहाँ के प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु और कला-चिन्तक ओकाकुरा का गहरा प्रभाव पड़ा। जब वे ओकाकुरा से पहली बार मिले तो उनसे पूछा—"जीवन क्या है ?" ओकाकुरा ने कोई उत्तर नहीं दिया। शान्त बैठे रहे। उनके मंगोलियन गालों पर एक परसियन युवती जैसी लालिमा दौड़ गयी। हर्षातिरेक से उनके नेत्रों में आँसू की बूँद ढुलक पड़ी। कुछ देर तक शान्ति छाई रही। सहसा माँ प्रकृति की भाँति उनका व्यक्तित्व विशाल प्रतीत होने लगा। वे अपने आसन से उठे। बाँहें ऊपर उठाईं। आकाश की ओर देखा और अस्फुट स्वर में कहा—"जल के नीचे से निकल कर अपनी अदृश्य नाल पर स्थित नीचे कीचड़ और ऊपर मुक्त आकाश से शक्ति संचय करता हुआ कमल-पुष्प माया की लहरों का अतिक्रमण करता हुआ ऊपर उठता है, उठता जाता है और तब तक ऊपर उठता रहता है, जब तक जल की सतह पर आकर पूरी तरह खिल नहीं जाता।" यह कहकर ओकाकुरा ने अपनी आँखें बन्द कर लीं और शान्त हो गये। पूर्ण सिंह अभिभूत थे। उन्हें अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया था।

भावुक और संवेदनशील होने के नाते पूर्ण सिंह ग्रहणशील भी थे। वे जिससे प्रभावित होते थे उसके होकर रहते थे। ओकाकुरा से प्रभावित होने पर कीट-भृंग न्याय से वे बौद्ध भिक्षु हो गये। उन्होंने केश मुड़ा लिये और काशाय वस्त्र धारण कर लिया। स्वभाव की इसी विशेषता के कारण जब वे स्वामी रामतीर्थ से मिले तो उनके व्यावहारिक वेदान्त और दिव्य व्यक्तित्व से इतना प्रभावित हुए कि बौद्ध भिक्षु का वेश त्याग कर संन्यासी हो गये। यहाँ यह ध्यातव्य है कि परवर्ती प्रभाव उन पर पड़े हुए पूर्ववर्ती प्रभाव को पूरी तरह निरस्त नहीं कर देता था। सारे प्रभाव पुंजीभूत होकर उनके व्यक्तित्व को समृद्ध करते जाते थे। ओकाकुरा के प्रभाव से उनकी जीवन-दृष्टि उदात्त और कला-चेतना व्यक्तिनिष्ट हो गयी थी। स्वामी रामतीर्थ ने उनकी त्याग-वृत्ति को गहरा, सर्वहित की भावना को पुष्ट और कर्म-चेतना को गतिशील कर दिया। इन सबके बावजूद सच्चाई यह है कि उनका अन्तः करण उस आधारभूत सौन्दर्य-चेतना और स्वच्छन्द-वृत्ति का त्याग नहीं कर

सका जो उन्हें जीवन के प्रभातकाल में अपने गाँव में प्रकृति के साहचर्य से प्राप्त हुई थी। भारत लौटने के बाद जब पहली बार कलकत्ते में वे अपनी माँ से मिले तो उनकी आँखों से आँसू भले न निकले हों उनका चित्त द्रवीभूत हो ही गया। माँ का व्यक्तित्व अब भी उनके संन्यासी मन से कहीं बड़ा था। इसका पश्चात्ताप भी उन्हें आजीवन बना रहा कि माँ को देखकर उनकी आँखों में आँसू क्यों नहीं आये।

गृहस्थ जीवन स्वीकार करने के बाद भी पूर्ण सिंह स्वामी रामतीर्थ के जीवन काल तथा उसके कुछ बाद तक वेदान्ती ही रहे। उन दिनों के उनके व्यक्तित्व को याद करते हुए श्री पद्मसिंह शर्मा ने लिखा है–"उन दिनों अध्यापक पूर्ण सिंह पर रामतीर्थ के वेदान्त की मस्ती का बड़ा गहरा रंग चढ़ा हुआ था। उस रंग में वे सराबोर थे। उनके आचार-विचार और व्यवहार में वही रंग झलकता था। वे उस समय स्वामी रामतीर्थ के सच्चे प्रतिनिधि प्रतीत होते थे। खेद है आगे चलकर घटनाचक्र में पड़कर वह रंग एक दूसरे रंग में बदल गया।"[1]

श्री काशीप्रसाद जायसवाल का अनुभव भी कुछ ऐसा ही है–"वेदान्ती पूर्ण सिंह का एक विचित्र व्यक्तित्व था। मैंने पहले-पहल उनसे उसी रूप में परिचय प्राप्त किया। एक निर्दोष इकहरा शरीर, साफ़ घुटी हुई मूँछ-दाढ़ी, शान्त और असाधारण सौन्दर्यपूर्ण दिव्य मुख-मण्डल, जिस पर योग की ज्योति जगमगाया करती थी। नवयुवक पूर्ण की वाणी में बिजली भरी थी। जब वे बात करते थे तो सबको वश में कर लेते थे। पचीस वर्ष बाद उन्होंने स्वयं मुझसे कहा था कि जब वे वेदान्ती थे तब उन्हें ऐसा मालूम होता था, मानों वे प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक वस्तु से संयुक्त हैं। मानसिक रूप से वे प्रत्येक में और प्रत्येक उनमें रहा करता था।[2]

सन् 1912 में भाई वीर सिंह के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर वे सिख गुरुओं की अध्यात्म-चेतना में लीन हुए। उनके इस परिवर्तित व्यक्तित्व का निरूपण करते हुए श्री काशीप्रसाद जायसवाल कहते हैं–"अब मुझे एक बिल्कुल ही भिन्न आध्यात्मिक व्यक्तित्व नज़र आया। अब वे उस परब्रह्म के प्रतिनिधि न थे और न वे 'अहं ब्रह्म अस्मि' थे। इसके स्थान में वे परमेश्वर के एक क्षुद्र सेवक, उसके अत्यन्त घनिष्ट दास और अत्यन्त कृतज्ञतापूर्ण भक्त थे। अब वे वह लोकोत्तर

---

1. *विशाल भारत*, मई 1931, जेठ 1988
2. *विशाल भारत*, सितम्बर 1931, आश्विन 1988

व्यक्ति नहीं थे जिन्हे हरएक को मानना पड़ता था। अब वे ऐसे वात्सल्य पूर्ण मित्र थे, जो आपके दुखों को बटाने के लिए तैयार था, जिसके आगे आप स्वयं ही अपने दोष स्वीकार कर लेते, जिससे आप शान्ति खोज सकते और पा सकते थे।''[1] सिख धर्म में अगाध आस्था रखते हुए भी पूर्ण सिंह एक सच्चे विश्वात्मवादी मनुष्य थे। वे नानक की वाणी में बुद्ध और ईसा का संदेश सुनते थे। उनके लिए सिख धर्म साम्प्रदायिक आचार-संहिता न होकर एक दैवी प्रेरणा, एक दिव्य संदेश, एक अव्यक्त संकेत मात्र था जो सर्वत्र रहस्यमय ईश्वर के अस्तित्व का आभास कराता था। इसे वे 'इन्सपिरेशन' कहते थे। उनका कहना था—''इन्सपिरेशन के बिना कुछ भी सत्य नहीं है। इन्सपिरेशन से युक्त होकर सब कुछ सत्य है।''[2] रहस्यमयी दिव्य सत्ता में उनका विश्वास कभी खंडित नहीं हुआ। वे आजीवन एक आस्थावान्, उदार, समन्वयशील, विश्वचेता, सिख भक्त बने रहे।

व्यावहारिक स्तर पर पूर्ण सिंह का व्यक्तित्व बहु-आयामी है। वे अपने समय के एक जाने-माने रसायन शास्त्री थे। औद्योगिक रसायन-विज्ञान के क्षेत्र में उनकी मौलिक खोजों का महत्त्व आज भी स्वीकार किया जाता है। 'फ़ारेस्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट, देहरादून' के स्वर्णजयंती के अवसर पर प्रकाशित स्मृत-ग्रंथ में इस क्षेत्र में उनकी देन को कृतज्ञता पूर्वक स्वीकार किया गया है। प्रथम श्रेणी के कवि और रचनाकार होने के बावजूद उनके वैज्ञानिक व्यक्तित्व के विकास में कभी कोई व्यवधान उपस्थित नहीं हुआ। यह इस बात का प्रमाण है कि एक विराट् व्यक्तित्व एक साथ कई दिशाओं में सक्रिय हो सकता है।

पूर्ण सिंह एक देश-भक्त और स्वातंत्र्य प्रेमी भी थे। वे क्रान्तिकारियों को छिपे तौर पर सहायता देते रहते थे। सन् 1930 में उन्होंने साइमन कमीशन के अध्यक्ष सर जॉन साइमन के नाम खुला पत्र लिखा था। साइमन कमीशन की नियुक्ति 1919 के भारतीय शासन-विधान की कार्यप्रणाली की जाँच करके उस पर रिपोर्ट देने के लिए हुई थी। कमीशन में एक भी भारतीय सदस्य नहीं था। इसीलिए उसका देश-व्यापी विरोध हुआ था। पूर्ण सिंह देश की जनता के साथ थे।

वस्तुतः वे जिस नवजागरण की उपज थे, देश-प्रेम और स्वतंत्रता उसके आधार-तत्त्वों में प्रमुख थे। अमेरिका से लौटने के बाद स्वामी रामतीर्थ ने उन्हें

---

1. *विशाल भारत*, सितम्बर 1931, आश्विन 1988
2 *डा. बलबीर सिंह स्मृतिग्रंथ*, दिसम्बर 1976

अपने समीप बैठाकर कहा था—"इस देश की स्वतंत्रता के लिए बलिदान देना होगा। सबसे पहले राम अपना सिर देगा, उसके बाद पूर्ण और उसके बाद सैकड़ों युवकों को तब तक अपना सिर देना होगा जब तक देश आज़ाद नहीं हो जायेगा। माता, भारतमाता को स्वतंत्र होना ही है।"[1]

पूर्ण सिंह एक समाजसेवी भी थे। वे सामाजिक भेद-भाव को समाप्त करना चाहते थे। उनके लिए जाति-पाँति, धर्म, सम्प्रदाय, ऊँच-नीच का भेद व्यर्थ था। वे एक सच्चे इन्सान का फ़र्ज़ पूरा करने के लिए तत्पर रहते थे। उन्होंने काँगड़ा के भूकम्प-पीड़ितों की भरपूर सहायता की थी। उनकी मासिक आय का बड़ा हिस्सा ग़रीब छात्रों की सहायता में ख़र्च हो जाता था। श्री काशीप्रसाद जायसवाल ने अपने अनुभवों के आधार पर कहा है—"सामाजिक दृष्टि से पूर्ण सिंह एक संस्था थे। लोग आ-आकर उनके चारों ओर एकत्र हुआ करते थे। अनेक मित्रों के लिए उनका निवास स्थान ' आइवन हो' अपने घर के समान था। उनका घर मस्जिद की भाँति हर एक के लिए खुला रहता था।"[2] मैं नहीं समझता कि कोई भी समांजसेवी, समाज के लिए, इससे अधिक समर्पित हो सकता है।

पूर्ण सिंह एक गृहस्थ थे। उनके पत्नी थी, बच्चे थे, मित्र और रिश्तेदार थे। एक संन्यासी कवि की गृहस्थी कैसी रही होगी, इसकी कल्पना आप कर सकते हैं। पूर्ण सिंह ने सारा भार मायापूर्ण सिंह पर छोड़ दिया था। घर-का-सारा कार्य वे अकेले सम्पन्न करती थीं। बच्चों की देख-रेख, घर की रसोई, चौका-बर्तन, सफ़ाई, आने-जाने वालों की सेवा, सब कुछ वे स्वयं करती थीं। शारीरिक श्रम के साथ ही उन्हें मानसिक तनाव भी झेलना पड़ता था। कारण था पूर्ण सिंह का संन्यासी मन। संचय करना वे जानते ही नहीं थे। ऐसी स्थिति में माया देवी के त्याग और समर्पण की सराहना करनी होगी। उन्होंने पूर्ण सिंह को शिकायत का कभी कोई अवसर नहीं दिया। पूर्ण सिंह को मायापूर्ण सिंह की निष्ठा, समर्पण, त्याग और सेवाभाव का अहसास भी था। *सेविन बास्केट्स आव प्रोज़ पोयम्स* माया देवी को समर्पित करते हुए उन्होंने लिखा है—"सहधर्मिणी माया देवी को जिन्होंने हमारी उथल-पुथल भरी तेज रफ़्तार की ज़िन्दगी में प्रतिपल अपने प्राणों की आहुति देकर संकट के क्षणों में हमारी जीवन-यात्रा को सुखद, मधुर और शीतल बनाए रखा।" श्रीमती कार्लाइल ने एक बार कहा था कि किसी भी औरत

---

1. *डॉ. बलवीर सिंह स्मृति ग्रंथ*, दिसम्बर, 1976
2. *विशाल भारत*, सितम्बर 1931 आश्विन 1988

को, जो मानसिक शान्ति चाहती है, कभी भी किसी लेखक से ब्याह नहीं करना चाहिए। माया पूर्ण सिंह ने अपने आचरण से यह दिखा दिया कि संन्यासी कवि की पत्नी होकर भी अपने घर की शान्ति बनाए रखी जा सकती है।

पूर्ण सिंह कवि और रचनाकार होने के साथ ही कला-चिन्तक और संस्कृति के व्याख्याता भी थे। आरम्भ में उनके कला-चिन्तन पर ओकाकुरा और गोइथे (Goethe) का प्रभाव था। वे सौन्दर्य-चेतना को जीवन का प्रेरक-तत्त्व मानते थे। उनकी धारणा थी कि सौन्दर्य, शिवत्व से श्रेष्ठ है, क्योंकि वह अपने में शिवता को समाहित किये रहता है। सिख गुरुओं की वाणी का गहरा अध्ययन करने के बाद उनकी धारणा में परिवर्तन हुआ। उन्हें वे रचनाएँ श्रेष्ठ प्रतीत होने लगीं जिनके मूल में दैवी चेतना प्रेरक-तत्त्व के रूप में विद्यमान थी। जिस रचना में ईश्वरीय सत्ता के अस्तित्व की झलक न मिले, जिसका बोध-पक्ष आध्यात्मिक न हो, वह उन्हें हीनतर लगती थी। वे कला में ईश्वरत्व की सुगंध ढूँढ़ने लगे। जहाँ वह मिली वहाँ वे रम गये। उस रचना की उन्होंने सराहना की। जहाँ नहीं मिली वहाँ से वे विमुख हुए और सारे कलात्मक सौष्ठव के बावजूद वह रचना उन्हें हीनतर लगी। इसी दृष्टि से उन्होंने विश्व-साहित्य के प्रति अपने उद्गार व्यक्त किये। उनका यह कला-चिन्तक रूप सर्वमान्य भले न हो। इसके पीछे एक जीवन-दृष्टि तो है ही।

सारी वैज्ञानिक शिक्षा और देश-विदेश के अनुभव के बावजूद पूर्ण सिंह नितान्त अव्यावहारिक व्यक्ति थे। वे सबका विश्वास कर लेते थे। धोखा खाने पर आक्रोश व्यक्त करते थे, किन्तु धोखा देने वाले व्यक्ति से मिलने पर ऐसा व्यवहार करते थे, जैसे कभी कुछ हुआ ही न हो। उनके आचरण में भीतर और बाहर का भेद नहीं था। भौतिक दृष्टि से पूर्ण सिंह को सफल व्यक्ति नहीं कहा जा सकता। वे अभाव में पैदा हुए और अभाव में ही उनके जीवन का अन्त हुआ। उनमें स्वाभिमान की मात्रा कुछ अधिक ही थी। जहाँ कहीं उनके स्वाभिमान के विरुद्ध कोई बात हुई, वहाँ से उन्होंने अपने को अलग कर लिया। यही कारण था कि वे कहीं अधिक दिनों तक टिक नहीं सके। लगता है, नौकरी के लिए वे बनाए ही नहीं गये थे। विधाता ने उनके रूप में एक अद्भुत सृष्टि की थी। वे इतने अधिक संवेदनशील थे कि छोटी-से-छोटी चूक के लिए बहुत दिनों तक पश्चात्ताप करते रहते थे।

उनके व्यक्तित्व में अव्यवस्था और अन्तर्विरोध भी कम नहीं थे। इस स्थिति को वे स्वाभाविक मानते थे और इसकी दार्शनिक व्याख्या करते थे। वे कहते

थे कि जीवन का अस्तित्व ही विरोधी तत्त्वों के विश्लेषण और सामञ्जस्य पर आधृत हैं। परम आनंद और परम प्रकाश की छाया में स्थित मैं स्वयं का विरोधी हूँ। प्रत्येक क्षण दूसरे क्षण का विरोधी है। देश और काल की बहुकोणीय नश्वरता के बीच मैं स्वयं नित्य सत्ता के रूप में विद्यमान हूँ। यह स्वयं में अन्तर्विरोधी है। कुछ भी हो, भारतीय साहित्य में पूर्ण सिंह अपने प्रतिमान स्वयं हैं। भारतीय मनीषा के इतिहास में अपने अप्रतिम व्यक्तित्व के लिए वे सदैव स्मरणीय रहेंगे।

4

कृतियाँ

अध्यापक पूर्ण सिंह ने अंग्रेज़ी, पंजाबी और हिन्दी इन तीनों भाषाओं में लिखा है और कुल मिलाकार लगभग पैंतालीस रचनाओं की सृष्टि की है। सबसे अधिक उन्होंने अंग्रेज़ी में लिखा है, उससे कम पंजाबी में और सबसे कम हिन्दी में। उनकी बहुत-सी कृतियाँ अभी अप्रकाशित हैं।

अंग्रेज़ी में लिखी रचनाएँ

अंग्रेज़ी पर अध्यापक पूर्ण सिंह का असाधारण अधिकार था। उसका प्रयोग उन्होंने मातृभाषा की तरह किया है। अंग्रेज़ी में उन्होंने गद्य की अनेक विधाओं में तो लिखा ही है, काव्य-रचना भी की है और अनुवाद भी किये हैं। गद्य में उन्होंने जीवनी, आलोचना, आत्मकथा, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि कई विधाओं में रचना की है। सबसे अधिक उन्होंने जीवनियाँ लिखी हैं। रचना और प्रकाशन-क्रम से उनके द्वारा लिखी जीवनियाँ निम्नलिखित हैं–

1. *द लाइफ़ एण्ड टीचिंग आफ़ श्री गुरुतेगबहादुर* (1908 ई.)
2. *गुरु गोविन्द सिंह* (1913 ई. में प्रकाशित)
3. *गुरु नानक साहिब* (1914 ई. में प्रकाशित)
4. *द स्टोरी आफ़ स्वामी राम* (1924 ई. में प्रकाशित)

उपर्युक्त जीवनियों के अतिरिक्त उनकी कुछ रचनाएँ ऐसी हैं जिनमें महापुरुषों के जीवन को सामने रखकर प्रेरक और उदात्त जीवन-मूल्यों को उभारने और नैतिक, आध्यात्मिक चेतना को जागृत करने का प्रयत्न किया गया है।

पूर्ण सिंह की ऐसी कृतियाँ निम्नलिखित हैं–

1. विक्टरी आफ़ फ़ेथ आर द मार्टिर्डम आफ़ फ़ोर सन्स आफ़ श्री गुरु गोविन्द सिंह (1908 ई. में प्रकाशित)

2. स्केचेज फ्राम सिख हिस्ट्री (1908 ई. में प्रकाशित)

3. द बुक आफ़ टेन मास्टर्स (1920 में रचित, 1926 ई. में प्रकाशित)

4. द स्पिरिट आफ़ द सिख्स (1927-30 के बीच लिखित, अब इसका प्रकाशन पंजाबी यूनिवर्सिटी ने किया है)

5. वाल्ट ह्विटमैन एण्ड द सिख इन्सपिरेशन (1927-30 के बीच लिखित, अप्रकाशित)

6. स्पिरिट बार्न पीपुल (1929 ई. में प्रकाशित)

उपर्युक्त कृतियों में यदि *द स्टोरी आफ़ स्वामी राम* को अलग कर दिया जाय तो शेष सभी मुख्यतः सिख इतिहास और सिख गुरुओं के जीवन से प्रेरणा लेकर लिखी गयी हैं। सबसे पहले पूर्ण सिंह का ध्यान गुरु गोविन्द सिंह के चार पुत्रों के बलिदान की ओर गया और इसे उन्होंने आस्था की विजय के रूप में देखा। इसके साथ ही वे सिख इतिहास की गौरवगाथा पर दृष्टि डालते हुए गुरु तेग बहादुर के जीवन और उनके उपदेशों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। इसके बाद गुरु गोविन्द सिंह के जीवन से प्रेरणा लेते हुए वे गुरु नानक साहब तक पहुँचते हैं। इस समय तक वे भाई वीर सिंह के प्रभाव में आ चुके थे और सिख गुरुओं के उपेदशों में निहित सार्वभौम मानव-मूल्यों के प्रति उनका ध्यान आकृष्ट हो चुका था। अब वे गुरु नानक के उपदेशों में बुद्ध और ईसा के आदर्शों को मूर्त देखने लगे थे। *द बुक आफ़ टेन मास्टर्स, द स्पिरिट आफ़ द सिख्स, वाल्ट ह्विटमैन एण्ड द सिख इन्सपिरेशन, द स्पिरिट बार्न पीपुल,* जैसी कृतियों की रचना सिख भावना के सार्वभौम स्वरूप को दृष्टि में रखकर की गई है।

द बुक आफ़ द टेन मास्टर्स में दस सिख गुरुओं के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। गुरु नानक के बाद अंगद नानक, अमरदास नानक, रामदास नानक, अर्जुन देव नानक और हरगोविन्द नानक का परिचय दिया गया है। सातवें और आठवें गुरुओं—हर राय नानक और हरकृष्ण नानक—का परिचय एक साथ दिया गया है। इसी प्रकार नवें गुरु तेग बहादुर और दसवें गुरु गोविन्द सिंह नानक का परिचय भी एक ही साथ एक अध्याय में दिया गया है। अंत के ग्यारह अध्यायों (108 से 118 तक) में गुरु नानक की वाणी का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। 119 वें अध्याय में गुरु गोविन्द सिंह के *दशम ग्रंथ* के कुछ चुने हुए अंशों का अंग्रेज़ी अनुवाद दिया गया है। पुस्तक के आरम्भ में पूर्ण सिंह ने

कहा है—"जीवन-पथ पर हमारे साथ चलने वालो थोड़ी देर के लिए रुको, कुछ बातें जो सिख बच्चों के रूप में हमने अपने पूर्वजों से सुनी हैं, तुमसे कहना चाहते हैं और आओ हम एक साथ गुरु नानक के उन गीतों को दुहरायें जो इस पृथ्वी से उस स्वर्ग तक की यात्रा में हमारे पाथेय हैं, जिस स्वर्ग में हमारे गुरु शान्ति की निद्रा में सो रहे हैं।" इस पुस्तक की भूमिका प्रसिद्ध अंग्रेज़ विद्वान् अर्नेस्ट राइस (Earnest Rhys) ने लिखी है। भूमिका में उन्होंने सिख धर्म के सांस्कृतिक पक्ष का मूल्यांकन करते हुए स्पष्ट किया है कि गुरु नानक की वाणी प्रेम, सद्भाव, एकता, त्याग और अमरत्व का संदेश देने वाली है। यह निस्सन्देह स्वर्ग की यात्रा में हमारा साथ देने वाली दिव्य वाणी है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि गुरु नानक की आत्मा परवर्ती सभी गुरुओं के व्यक्तित्व में संक्रमित हुई थी। इसीलिए पूर्ण सिंह ने प्रत्येक गुरु के साथ 'नानक' शब्द जोड़ दिया है।

स्पिरिट आफ़ द सिख्स का प्रकाशन तीन खण्डों में पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला ने किया है। इसमें पूर्ण सिंह ने सिख धर्म की मूल चेतना का आधुनिक दृष्टि से मूल्यांकन किया है। कर्तार सिंह दुग्गल ने लक्षित किया है कि इसकी रचना करते समय पूर्ण सिंह मार्क्सवाद तथा रूस में हो रहे क्रान्तिकारी परिवर्तनों से भी प्रभावित थे। उन्होंने मार्क्स के मानवतावाद और सामाजिक आर्थिक समता के सिद्धान्तों में गुरु नानकदेव के शब्दों की प्रतिध्वनि सुनी थी।

वाल्ट ह्विटमैन एण्ड द सिख इन्सपिरेशन में पूर्ण सिंह को सिख गुरुओं की वाणी में अमेरिका के मस्तयोगी कवि वाल्ट ह्विटमैन का स्वर सुनाई पड़ा है। वस्तुतः पूर्ण सिंह ने वाल्ट ह्विटमैन की कविता में भारतीय ब्रह्म विद्या और ईरान की सूफ़ी विद्या का सामञ्जस्य लक्षित किया था। यही सामञ्जस्य सिख गुरुओं की वाणी में भी है। यह कृति अभी तक अप्रकाशित है इसकी रचना पूर्ण सिंह ने 1927 से 30 के बीच जारनवाला में रहकर की थी।

द स्पिरिट वार्न पीपुल चौदह अध्यायों में लिखी गयी कुल 205 पृष्ठों की रचना है। यह भाई वीर सिंह को समर्पित है। पूर्ण सिंह अनुभव कर रहे थे कि सिख युवक भौतिक उपलब्धियों के पीछे दौड़ रहे हैं और सिख गुरुओं के आदर्शों से विमुख हो रहे हैं। सिख युवकों में सिख गुरुओं के जीवनादर्शों से परिचित कराने के उद्देश्य से उन्होंने कुछ वक्तव्य तैयार किये थे। ये वक्तव्य ही यहाँ पुस्तकाकार प्रकाशित कर दिये गये हैं। इस कृति में सिख गुरुओं की अध्यात्म-चेतना की व्याख्या करने के साथ ही *सिख और अन्तर्राष्ट्रीयता*

(Internationalism and the Sikhs) तथा कला और व्यक्तित्व (Notes on art and Personality) जैसे विषयों पर भी विचार किया गया है।

स्टोरी आफ़ स्वामी राम पूर्ण सिंह की महत्त्वपूर्ण कृति है। 1902 में जापान में हुई प्रथम भेंट के बाद से ही वे उनके प्रति समर्पित थे। जापान से लौटने के बाद लाहौर में रहते हुए उन्होंने *संत उपदेश* नामक पत्र में 'स्वामी रामतीर्थ महाराज की अमली ज़िन्दगी पर तैराना नज़र शीर्षक एक निबन्ध लिखा था। 1924 में स्वामी रामतीर्थ की 280 पृष्ठों की विस्तृत जीवनी लिखकर वे गुरुऋण से मुक्त हुए। परिशिष्ट को छोड़कर इस कृति में कुल बीस अध्याय हैं। लेखक का उद्देश्य स्वामी राम की क्रमबद्ध जीवनी लिखना नहीं है। पहले दो अध्याओं में स्वामी राम के संन्यासी रूप का वर्णन का किया गया है। तीसरे अध्याय में उनके विचारों का सार प्रस्तुत किया गया है। चौथे अध्याय में स्वामी जी द्वारा संपादित पत्र *अलिफ* से उन प्रेरक अवधारणाओं को संकलित किया गया है जिनसे उन्हें शक्ति प्राप्त होती है। पाँचवें अध्याय में उनके उच्चतर विचार और दिव्य संदेश संकलित हैं। छठे, सातवें और आठवें अध्यायों में स्वामी राम के संन्यासी होने के पूर्व लाहौर में बिताए गये जीवन का परिचय है। नवें अध्याय में स्वामी जी के पहाड़ों, जंगलों तथा घोर निर्जन स्थानों के प्रति तीव्र आकर्षण का वर्णन है। दसवें अध्याय में स्वामी जी के प्रारम्भिक जीवन का परिचय दिया गया है। ग्यारहवें और बारहवें अध्यायों में क्रमशः उनके जापान और अमेरिका में बिताए गये जीवन की झलक है। तेरहवें अध्याय में उनके मथुरा और पुष्कर तथा चौदहवें अध्याय में ऋषिकेश के निकट व्यास आश्रम में व्यतीत जीवन के चित्र हैं। पन्द्रहवें अध्याय में उत्तराखण्ड के वशिष्ठ आश्रम में बिताये गये उनके जीवन के अन्तिम दिनों का वर्णन है। सोलहवें अध्याय में स्वामी जी के पत्र संकलित हैं। सत्रहवें और अठारहवें अध्यायों में देश की तत्कालीन समस्याओं के सम्वन्ध में स्वामी जी के विचार प्रस्तुत किये गये हैं। उन्नीसवें अध्याय में स्वामी जी की कविताएँ संगृहीत हैं। बीसवें अध्याय में पूर्ण सिंह ने संस्मरणात्मक शैली में स्वामीजी के व्यक्तित्व का आकलन पूरी श्रद्धा से किया है। इस प्रकार स्वामी राम की यह कहानी तथ्यपरक जीवनी न होकर एक ऐसा पारदर्शी दर्पण है, जिसमें हम उनके अन्तः और बाह्य जीवन की झाँकी देख सकते हैं।

पूर्ण सिंह की अन्य गद्य-रचनाओं में उपन्यास, नाटक, कहानी, आत्मकथा, आलोचना आदि विधाओं से सम्बद्ध रचनाएँ सम्मिलित हैं। पूर्ण सिंह की प्रामाणिक जीवनी के लेखक उनके छोटे पुत्र रामिन्दर सिंह ने उनके चार उपन्यासों

का उल्लेख किया है। पहला उपन्यास *द थंडरिंग डान* है। इसकी रचना 1902-3 के बीच उन्होंने जापान में रहते हुए की थी। इसका प्रकाशन जापानी पत्रिका में धारावाहिक रूप से हुआ था। इसमें तत्कालीन भारतीय समाज का चित्रण किया गया था। दूसरा उपन्यास *प्रकाशिना* है। इसमें एक बौद्ध राजकुमारी के जीवन को आधार बनाया गया है। इसकी रचना 1922 ई. में ग्वालियर में की गयी थी। अब इसका प्रकाशन पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला कर रही है। इसका सम्पादन कर्तार सिंह दुग्गल ने किया है। आपको खेद है कि इसके समय से प्रकाशित न होने के कारण पूरी एक पीढ़ी ऐसे एक उत्कृष्ट उपन्यास से वंचित रही है जिस पर किसी भी लेखक को समुचित गर्व हो सकता है।[1] *'भगीरथ'* तीसरा उपन्यास है। इसकी रचना 1925 में देहरादून में हुई थी। इसमें पुराने और नये पंजाब के सामाजिक जीवन की मिली-जुली झाँकी देखी जा सकती है। यह अभी तक अप्रकाशित है। चौथा उपन्यास *द सन आफ़ गाड ए मैन* है। यह जारनवाला में सन् 1929 के आस-पास लिखा गया था। यह भी अप्रकाशित है। स्मरणीय है कि पूर्ण सिंह इन्हीं दिनों टॉल्स्टाय के प्रसिद्ध उपन्यास *रिसरेक्शन* (Resurrection) का अनुवाद भी कर रहे थे। ऐसी स्थिति में टॉल्स्टाय की उपन्यास-कला का प्रभाव उनकी उपन्यास-रचना पर अवश्य पड़ा होगा। समय से इन उपन्यासों के प्रकाशित न होने के कारण ही पूर्ण सिंह को पंजाबी साहित्य के इतिहास में एक उपन्यासकार के रूप में वह मान्यता नहीं मिली जो मिलनी चाहिए थी।

पूर्ण सिंह की कहानियाँ आदर्शवादी हैं। वे समाज द्वारा उपेक्षित व्यक्तियों में भी उच्चतम आदर्शों की सम्भावना देखती हैं। *द जसमिन गारलैण्ड* (मल्लिका की माला) और *शार्ट स्टोरीज़* ये दोनों कहानी-संग्रह अभी तक अप्रकाशित हैं। *द मारबाल बाव, रेन कालर, पर्ल नेकलेस भाईवीर सिंह, भाई करम सिंह आफ़ हांती* आदि जिन कुछ कहानियों के स्फुट उल्लेख मिलते हैं, उनसे यही स्पष्ट होता है कि पूर्ण सिंह पात्रों के चरित्र और उसके मनोवैज्ञानिक विकास को, महत्त्व न देकर ऐसी कथा-रचना करते हैं जिसके भीतर से जीवन के उच्चतम आदर्श स्फुटित होकर सामने आ जाते हैं।

पूर्ण सिंह के दो नाटकों का उल्लेख मिलता है। *द ब्राइड आफ़ द स्काई* (The Bride of the sky) और *बोने ब्यूट* (Baone Bute)। *द ब्राइड आफ़ द स्काई* की रचना ग्वालियर में 1924 ई. के आस-पास हुई थी। यह वस्तुतः

---

1. *अध्यापक पूर्ण सिंह*, सं. डॉ. नगेन्द्र पृ 31

काव्य-रूपक है। *बोने ब्यूट* किसी जापानी नाटक का अनुवाद है। यह दोनों ही कृतियाँ अप्रकाशित हैं।

एन ओपेन लेटर टू सर जॉन साइमन में साइमन कमीशन के अध्यक्ष सर जॉन साइमन का खुला विरोध किया गया है। इस कमीशन की नियुक्ति सन् 1927 ई. में हुई थी। इसका देश-व्यापी विरोध हुआ था। पूर्ण सिंह का उपर्युक्त खुला पत्र उनकी देश-भक्ति का प्रमाण है। यह पत्र *द माडर्न प्रेस लाहौर* से प्रकाशित हुआ था।

अल्टीमेट नालेज इज़ फ़ीलिंग एक छोटी-सी रचना है। इसका प्रकाशन *खालसा रिव्यू* लाहौर में हुआ था। पूर्ण सिंह कोरे तर्क पर आधृत बुद्धिव्यवसायात्मक ज्ञान को अन्तिम नहीं मानते। उनके अनुसार सहजानुभूति पर आधृत ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। उपर्युक्त रचना में उन्होंने पूरी निष्ठा से इसी तथ्य का प्रतिपादन किया है।

द पिलग्रिम्स क्वेस्ट का प्रकाशन भी *खालसा रिव्यू* लाहौर में ही हुआ था। इसमें अध्यात्म के पथ पर अग्रसर एक सत्यान्वेषी की अनुभूतियों का चित्रण है। इसमें पूर्ण सिंह के निजी अनुभवों को लक्षित किया जा सकता है।

पूर्ण सिंह की गद्य-रचनाओं में *आन पाथ्स आव लाइफ़* का विशेष महत्त्व है। यह उनकी आत्मकथा है। इसकी रचना जारनवाला में रहते हुए 1927 से 30 ई. के बीच हुई थी। इसमें उन्होंने अपनी उतार-चढ़ाव भरी ज़िन्दगी का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। यह उनके रचनाकार और मनुष्य दोनों रूपों को समझने के लिए एक प्रामाणिक दस्तावेज़ है। इसमें उनका गाँव, उनका परिवार, उनके मित्र, उनका जीवन-संघर्ष, उनका स्वभाव, चीज़ों को देखने और समझने की उनकी दृष्टि, उनकी आस्था, यह सब कुछ मूर्त हो उठा है। अपनी माता के स्वभाव का चित्रण करते हुए वे कहते हैं—"हमारी माता ने हमें राजकुमारों की तरह पालकर इस प्रकार बड़ा किया था कि हमारे मन में सांसारिक वैभव के प्रति कोई लिप्सा उत्पन्न ही नहीं हुई। मेरे घर के द्वार ग़रीबों और अभावग्रस्तों के लिए सदैव खुले रहते थे। मेरी माँ जब किसी कार्य को पूरा कर लेने का निश्चय कर लेती थीं, तब उन्हें संसार की कोई शक्ति विचलित नहीं कर सकती थी।"[1] पूर्ण सिंह का स्वभाव था कि वे जिसे प्यार करते थे, उसी के अनुरूप हो जाना चाहते थे। अपने किशोरावस्था के एक मित्र अलबर्ट के विषय में वे

---

1. *पूर्ण सिंह*, रमिन्दर सिंह, पृ. 2 पर उद्धृत

कहते हैं—"मैं चाहता था कि मेरे दाँत अलबर्ट के दाँतों जैसे हो जायें, मेरी नाक, मेरे गाल सब उसी जैसे हो जायें। जब मैं उसे प्यार करता हूँ तब क्या यह स्वाभाविक नहीं कि मैं उसी जैसा हो जाऊँ।"[1] पूर्ण सिंह ने यह आत्मकथा तब लिखी थी जब इस विधा का प्रचलन बहुत कम था। इसका प्रकाशन उत्तम चंद कपूर एण्ड सन्स, दिल्ली ने किया था।

पूर्ण सिंह के काव्य और कलाचिन्तन को समझने के लिए उनकी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति *द स्पिरिट आफ़ ओरियंटल पोयट्री* का अध्ययन आवश्यक है। इसका प्रकाशन केगन पाल ट्रेंच एण्ड कम्पनी, लण्डन से 1929 ई. में हुआ था। इसे पूर्ण सिंह ने ग्वालियर में रहते हुए लिखा था। इस कृति का दूसरा संस्करण पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला द्वारा 1969 में प्रकाशित हुआ है। इसे पूर्ण सिंह ने भाई वीर सिंह को समर्पित किया है। पूरी पुस्तक 232 पृष्ठों की है और दस अध्यायों में समाप्त हुई है। इसमें पूर्ण सिंह ने पूरे विश्व-काव्य के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये हैं। उन्होंने सिख गुरुओं की भक्ति-कविता की अन्तश्चेतना को केन्द्र में रखकर अपने उद्‌गार व्यक्त किये हैं। भारतीय कवियों में जयदेव, भर्तृहरि आदि का मूल्यांकन करने के साथ ही उन्होंने परसिया के उमर खैयाम, हाफ़िज़, शम्स तबरेज तथा योरप के दाँते गोथे, थोरो, शेक्सपीयर, मिल्टन, टैनीसन, बर्न्स, वड्र्सवर्थ, विलियम ब्लेक आदि के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये हैं। जापान की सौन्दर्य और प्रेम की भावना से छलकती हुई कविताएँ भी उन्हें प्रिय हैं। योरप के कवियों में उन्हें दाँते, गोइथे, थोरो, मिल्टन और विलियम ब्लेक विशेष रूप से प्रभावित करते हैं। कार्लाइल को वे मीराबाई के साथ रखकर देखते हैं। टाल्सटाय की प्रतिभा को स्वीकार करते हुए भी वे अनुभव करते हैं कि ईसा की अन्तरात्मा तक वे नहीं पहुँच सके हैं। पूरे विश्वकाव्य का आकलन पूर्ण सिंह ने एक सहजानुभूति से भावित रहस्यवादी भक्त-कवि की दृष्टि से किया है। जिस समय यह कृति प्रकाशित हुई थी उस समय एडिनबरा, लण्डन, वोस्टन, न्यूयार्क, जापान आदि के प्रमुख पत्रों में इसकी समीक्षा प्रकाशित हुई थी और इसके महत्त्व को स्वीकार किया गया था।

पूर्ण सिंह द्वारा अंग्रेज़ी में रचित काव्य-कृतियों की संख्या लगभग दस है। रचना और प्रकाशन-क्रम से उन्हें इस प्रकार रखा जा सकता है—

द सिस्टर्स आफ़ द स्पिनिंग व्हील (1915)

---

1. *पूर्ण सिंह*, रमिन्दर सिंह, पृ. 6 पर उद्‌धृत

द वीना प्लेयर्स (1919, अप्रकाशित)

एन आफ़्टर नून विथ सेल्फ़ (1920)

ऐट हिज़ फ़ीट (1920)

द हिमालयन पाइन्स (1923, ग्वालियर में रचित, 1980 में पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला द्वारा प्रकाशित)

द वाण्डरिंग मिन्स्ट्रल (1920, अप्रकाशित)

अनस्ट्रेंग बीड्स (1923, गद्यगीत, जे. एम. डेण्ट एंड संस, लण्डन, द्वारा प्रकाशित)

द रोजेज़ आफ़ कश्मीर (1926, अप्रकाशित)

द बर्निंग केडिल्स (1926-27, अप्रकाशित)

सेविन बास्केट्स आफ़ प्रोज़ पोयम्स (1928 ई., केगन पाल एण्ड ट्रेंज ट्रबनर एण्ड कम्पनी, लण्डन द्वारा प्रकाशित)

उपर्युक्त रचनाओं में से *द बीना प्लेयर्स, द वान्डरिंग मिन्स्ट्रल, द रोजेज़ आफ़ कश्मीर,* और *द बर्निंग कैडल्स* अभी तक अप्रकाशित हैं। *द हिमालयन पाइन्स* का प्रकाशन 1980 ई. में पंजावी यूनिवर्सिटी ने किया है। शेष रचनाएँ प्रकाशित होने पर सराही गयी थीं। पूर्ण सिंह को कवि रूप में व्यापक प्रतिष्ठा *द सिस्टर्स आफ़ द स्पिनिंग व्हील* के प्रकाशन से प्राप्त हुई थी। इसकी रचना फ़रवरी 1915 ई. में देहरादून में हुई थी, प्रकाशन 6 वर्ष वाद 1921 ई. में हुआ था। प्रकाशन जे. एम. डेण्ट एण्ड संस, लि. लण्डन, ने किया है। इसकी 38 पृष्ठों की विस्तृत भूमिका प्रसिद्ध अंग्रेज़ विद्वान् अर्नेस्ट राइस ने लिखी है। इसमें कुल सात अध्याय हैं। पहले अध्याय के दो भाग किये जा सकते हैं। पहले भाग में कोयल, चातक, राजहंस, पारस आदि पर छोटी-छोटी कविताएँ हैं। दूसरे भाग में पंजाव की स्वच्छन्द प्रेम-कथाओं—ससि और पुन्नू तथा सोहनी-महिवाल—का वर्णन है। शेष 6 अध्यायों में सिख गुरुओं और कबीरदास की भक्ति कविताओं की मूल भावना को नये रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रकाशित होने पर यह रचना यूरोपीय और भारतीय पत्र-पत्रिकाओं में चर्चित हुई थी। समीक्षकों ने पंजाव की धरती से पूर्ण सिंह के गहरे लगाव की सराहना की थी और यह कहा था कि उन्होंने सिख गुरुओं की वाणी को नई ऊर्जा प्रदान करके पुनर्जीवित कर दिया है। *अनस्ट्रेंग बीड्स* का प्रकाशन भी लण्डन की उपर्युक्त कम्पनी ने ही किया है और भूमिका भी अर्नेस्ट राइस ने ही लिखी है। वस्तुतः यह गद्यगीतों का संग्रह है। रचना गद्य में है किन्तु इसकी मूल संवेदना कविता की है। इसमें कुल 20

गद्यगीत हैं। कुछ सूक्तिवत् एक-दो पंक्तियों के हैं और कुछ बड़े हैं, कई पंक्तियों में समाप्त हुए हैं। दो-एक सूक्तिवत गद्यगीतों के हिन्दी अनुवाद इस प्रकार हैं–

प्रेम–प्रेम हमारे हृदय में स्थित स्वर्ग है, लेकिन विरले ही इसका अनुभव कर पाते हैं।

स्त्री–स्त्री का आगमन ईश्वर की उपस्थिति का अहसास कराता है।

स्वतंत्रता-स्वतंत्रता एक पवित्र रत्न है जिसे एक देवदूत ने मुझे स्वप्न में दिया है तब से मैं यह सोचकर आह्लादित हूँ कि कोई मेरा अलक्ष्य सहायक भी है।

इस पुस्तक की प्रति प्राप्त होने पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा था–"यह बहुत अच्छा हुआ कि आपने अपने मनकों (Beads) को अनगूँथे ही बिखेर दिया अब यह आपके पाठकों का दायित्व है कि वे इसे अपने आह्लाद के सूत्र से गूँथ लें।[1]" ऐसा समझा जाता है कि इसकी रचना पूर्ण सिंह ने वाल्ट ह्विटमैन और रवीन्द्रनाथ ठाकुर से प्रभावित होकर की है।

सेविन बास्केट्स आफ़ प्रोज़ पोयम्स भी गद्यगीतों का ही संग्रह है। इसका प्रकाशन 1928 ई. में केगन पाल ट्रेन्च ट्रबनर एण्ड कम्पनी लण्डन से हुआ है। यह रचना पूर्ण सिंह ने अपनी धर्मपत्नी मायादेवी को समर्पित की है। इसकी सात टोकरियाँ साथ अध्याय हैं। प्रत्येक टोकरी गद्य-काव्य के विशिष्ट पुष्पगुच्छों से भरी है। इस कृति की विशेपता यह है कि इसमें लोक-जीवन की निश्छल गंध और रहस्यमयी सत्ता के प्रति प्रणय-निवेदन का दिव्य उदात्त स्वर दोनों एक साथ उपस्थित हैं। हम पथोहर के लोक-गीतों के मुक्त उल्लास के साथ ही वृन्दावन की गोपियों, मीरा, उमर ख़ैयाम, तुलसीदास, गोइथे, कार्लाइल, वाल्ट ह्विटमैन आदि के दिव्य प्रणयगीतों का उदात्त स्वर भी सुनते हैं। इस रचना में पूर्ण सिंह ने सिख गुरुओं की अध्यात्म-चेतना को विश्व के समस्त रहस्यवादी कवियों की प्रेम-व्यंजना के साथ एकाकार कर दिया है।

ऐट हिज़ फ़ीट का प्रकाशन 1920 ई. में हुआ। प्रकाशन 'जी. पी. एण्ड कम्पनी,' ग्वालियर ने किया है। इस काव्य-संग्रह में भक्तिपरक भावात्मक कविताएँ संगृहीत हैं। इसमें आत्मनिवेदन का स्वर प्रधान है। इसे भक्त-कवियों के विनय पदों के साथ रखा जा सकता है।

---

1. It is best that you should send your beads unstrung, it is for your readers to strung them with a single thread of delight",

—Rabindranath Tagore

एन आफ्टर नून विथ सेल्फ़ भी गद्य-काव्य है। इसमें तीस गद्य-कविताएँ संगृहीत हैं। वस्तुतः ये छोटे-छोटे भावात्मक उद्‌गार हैं, जो पूर्ण सिंह ने ग्वालियर के विक्टोरिया कालेज के पुराने छात्रों के वार्षिक सम्मेलन के अवसर पर 12 नवम्बर, 1922 ई. को उनके समक्ष व्यक्त किये थे।

इन कविताओं का स्वर भी भक्ति-परक और आस्थावादी है। इसकी अन्तिम कविता गुरु ग्रंथ साहब की किसी कविता का पद्यबद्ध भावानुवाद है। इसका हिन्दी रूपान्तर कुछ इस प्रकार का होगा—

प्रिय तुम महत् श्वेत कमल हो,
और मैं एक क्षुद्र मधुलोभी मक्खी
रात्रि की अँधियारी धीरे-धीरे मेरे निकट आ रही है;
तुम अपनी श्वेत पंखुड़ियों के साथ
मुझे भी अपने गंध पूर्ण अस्तित्व के भीतर समेट लो।

द हिमालयन पाइन्स में संगृहीत कविताएँ अगस्त 1923 में शिमला में लिखी गयी थीं। यह रचना लगभग 100 पृष्ठों की है। पूर्ण सिंह के जीवन-काल में इसका प्रकाशन नहीं हो सका था। इधर 1980 ई. में पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला ने इसका प्रकाशन किया है। इसकी अन्तिम दस कविताओं का हिन्दी रूपान्तर अजित कुमार ने किया है। इन कविताओं में एक ऐसी आकुल आत्मा की बेचैनी मुखर है, जो सीमाओं के बंधन से मुक्त होने के लिए छटपटा रही है और असीम सत्ता के साथ मिलकर एकाकार हो जाना चाहती है। इसमें संगृहीत एक कविता 'मेरा भावी आनंद' की आरम्भिक पंक्तियाँ हैं—

मेरे प्रभु ! मैं सबसे ऊब चुका हूँ, अब तो
मिल जाओ मुझे, कोई भी
अन्य हमारे निकट नहीं।
घायल हिरनी जैसे घाटी की छाया को चाहे,
वैसे ही मैं तुम्हारी शरण में आना
चाहती हूँ।

स्व की चेतना से मुक्त होने की छटपटाहट पूर्ण सिंह की अनेक कविताओं में व्यक्त हुई है। उपर्युक्त काव्य-कृतियों के अतिरिक्त पूर्ण सिंह द्वारा भाई वीर सिंह की कविताओं का *नरगिस* शीर्षक से किया गया अनुवाद भी यहाँ उल्लेखनीय है। *नरगिस* में वीर सिंह की 26 कविताओं का स्वतंत्र भावानुवाद है। अनुवाद

इतनी छूट लेकर किया गया है कि मौलिक रचना-सा प्रतीत होता है। इसका प्रकाशन 1924 ई. में हुआ था। इसकी भूमिका अर्नेस्ट राइस (Ernest-Rhys) ने लिखी है। भूमिका में कहा गया है—"भाई वीर सिंह ने *सिस्टर्स आफ़ द स्पिनिंग हील* और *अनस्ट्रेंग बीड्स* के रचयिता के रूप में अपनी कविताओं के अंग्रेज़ी रूपान्तरण के लिए एक ऐसा व्यक्तित्व प्राप्त कर लिया है जिसने कविताओं को अंग्रेज़ी में प्रस्तुत करने की स्वछन्द-पद्धति अपनाई है। अनुवादक ने समानार्थक पद-विन्यास के प्रयत्न में प्रायः पंजाबी कविता की कसी हुई पंक्तियों को पूरी तरह फैला दिया है"[1]

वस्तुतः पूर्ण सिंह ने किसी रचना का शब्दशः अनुवाद नहीं किया है। वे कविता की भावना में रमकर उसे अपनी कल्पना-सृष्टि बनाकर प्रस्तुत करते हैं। अनुवाद की यह पद्धति उन्होंने अन्यत्र भी अपनाई है।

पंजाबी में रचित कृतियाँ

पूर्ण सिंह की पंजाबी में लिखी गयी गद्य-कृतियाँ अधिकतर अनुवाद हैं। 1914 ई. में देहरादून में रहते हुए उन्होंने *अब चली जोत* नाम से इमर्सन के निबन्धों का अनुवाद किया था। इमर्सन ने 1860 ई. में *'कन्डक्ट आफ़ लाइफ़'* शीर्षक से *उपासना* (Worship) *भाग्य* (Fate) *सत्ता* (Power) *सम्पत्ति* (Wealth) आदि विषयों पर एक निबन्ध-माला तैयार की थी। *अब चली जोत* इन्हीं निबन्धों का अनुवाद है। इसे 'खालसा ट्रैक्ट सोसाइटी' अमृतसर, ने प्रकाशित किया था। लगभग इसी समय आपने कार्लाइल के निबन्धों का भी अनुवाद किया था। कालाईल के *आन हीरोज, हीरो वरशिप* और *द हीरोइक इन हिस्ट्री* शीर्षक निबन्ध 1814 ई. में प्रकाशित हुए थे। पूर्ण सिंह ने प्रथम दो संग्रहों का अनुवाद *कलाधरी ते कलाधरी पूजा* नाम से किया है। अनुवाद कुल चार वक्तव्यों के रूप में प्रस्तुत किया गया था। प्रथम तीन वक्तव्यों का प्रकाशन खालसा ट्रैक्ट सोसाइटी ने ही किया था। चौथा वक्तव्य अप्रकाशित रह गया था। 1927 ई. से 1930 तक जारनवाला में रहते हुए पूर्ण सिंह ने टाल्सटाय के प्रसिद्ध उपन्यास *रिसरेक्शन* (Ressurection) का *मोइयाँ दी जाग* ! नाम से दो खण्डों में अनुवाद किया था। पहले खण्ड का प्रकाशन 'उत्तमचन्द कपूर एण्ड संस,' लाहौर ने किया था। दूसरा खण्ड अप्रकाशित रह गया। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि हिन्दी में

---

1. *नरगिस* की भूमिका, अर्नेस्ट राइस

अब 1977 ई. में इसका अनुवाद *पुनरुत्थान* नाम से 'प्रगति प्रकाशन सोवियत संघ' ने किया है। इसके अनुवादक हैं, हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक श्री भीष्म साहनी। पूर्ण सिंह का ध्यान 1927 ई. में ही इस कृति की ओर गया था। कारण यह है कि इसकी अन्तश्चेतना आध्यात्मिक है। इसके कथानायक नेख्लूदोव को अंत में यह स्पष्ट हो जाता है। कि "जिस भयानक दुष्टता से इन्सान यन्त्रणाएँ भोग रहे हैं, उनसे छुटकारा पाने का केवल एक ही साधन है कि वे भगवान के सामने हमेशा इस बात को क़बूल करें कि वे क़सूरवार हैं और इसीलिए दूसरों को दण्ड देने या सुधारने के योग्य नहीं हैं।"[1] अपने अनुवादों द्वारा पूर्ण सिंह ने पंजाबी गद्य को समृद्ध करने के साथ ही पंजाबी जनता को उच्चतम नैतिक मूल्यों से परिचित कराने का उद्देश्य भी सामने रखा था। पूर्ण सिंह की मौलिक पंजाबी गद्य कृति *'खुले लेख'* हैं। ये लेख 1927 ई. से 29 ई. के बीच जारनवाला में ही लिखे गये थे। इसका प्रकाशन 1929 ई. में 'उत्तम चन्द कपूर एण्ड संस, लाहौर' से हुआ है। यह कृति 278 पृष्ठों की है। इसमें 14 लेख संगृहीत हैं। लेखों के विषय हैं—*1. प्यार, 2. कविता, 3. कवि का दिल, 4. मजहब, 5. आर्ट, 6. वतन दा प्यार 7. इक जापानी नायिका की जीवन कथा, 8. आपणे मन नाल गल्लां, 9. कीरत, 10. मित्रता, 11. घलोई ग्लेशियर (कश्मीर) दी यात्रा, 12. कीरत ते मिट्ठा बोलना, 13. पंजाबी साहित्य पर कटाख्य, 14. वोट ते पालिटिक्स* लेख छोटे-बड़े सभी तरह के हैं।

इन लेखों को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है, कि पूर्ण सिंह की सोचने और अनुभव करने की दिशा क्या थी ? वे मुख्यतः प्रेम, धर्म, कला, कविता, देशभक्ति, मित्रता, आदि विषयों पर सोचते रहते थे और नैतिक मूल्यों की चरितार्थता पर बल देते थे। कभी-कभी वे अपने मन से ही बातें करने लगते थे। उनके वे लेख अधिक मार्मिक हैं जिनमें उन्होंने स्वयं से बातें करते हुए अपने अंतःकरण का उद्‌घाटन किया है।

मेरा साईं, कवि दा दिल, और *चुप प्रीत दा शाहंसाह व्योपारी* जैसी उनकी कुछ अन्य रचनाएँ भी पंजाबी में हैं। इनमें से प्रथम दो का प्रकाशन 'वज़ीरे हिन्द प्रेस अमृतसर' से 1920 ई. में हुआ था। तीसरे का प्रकाशन 1925 में 'खालसा ट्रैक्ट सोसाइटी', अमृतसर, ने किया था। इन रचनाओं में पूर्ण सिंह का आस्थावान और प्रेमी व्यक्तित्व अपने सहज रूप में विद्यमान है।

---

1. पुनरुत्थान, पृ. 645, प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1977

पंजाबी में पूर्ण सिंह के कुल तीन कविता संग्रह हैं, *1. खुल्हे मैदान 2. खुल्हे घुंड* और *3. खुल्हे आसमानी रंग।* इनमें से प्रथम दो की रचना 1922 ई. में हुई थी। इन दोनों का प्रकाशन 'वज़ीरे हिन्द प्रेस' अमृतसर से हुआ था। *'खुल्हे आसमानी रंग'* की रचना 1926 ई. में हुई थी। इसका प्रकाशन उनकी मृत्यु के 34 वर्षों बाद 1965 ई. में 'साहित्य अकादेमी दिल्ली' ने किया है।

'खुल्हे घुंड' में कुल 17 कविताएँ संगृहीत हैं। इन कविताओं के शीर्षक हैं—*1. नाम मै पूछदा नाम मेरा की है, 2. करम-करम कूक दे कौण करदा' 3. करतार द करतारता, 4. फलसफा ते आर्ट, 5. पारस मै, 6. प्यार दा सदा लुकिआ भेत, 7. दीविआ लख्खां द जगमग, 8. बुद्ध जीदा बुत धिआनी बुत, 9. धयान दी धुन्द जे ही, 10. एलिफेण्टा दी त्रैमूर्ती, 11. पिआरी सिख-मै होई करतार दी, 12. मंजल अपड़िआ दी रोज मंजल, 13. रब्ब नू औड़क वणी आण इक दिन, 14. किरत उनर दी चुप कूक दी, 15. सुरत ते हंकार, 16. अद्धी मीटी अक्ख भाई नन्दलाल जी, 17. गुरु अवतार सुरति।* उपर्युक्त कविताओं के विषय पूर्ण सिंह की मानसिकता के साक्षी हैं। उनकी काव्य-परिधि ईश्वर, गुरु, कर्म, कला, दर्शन, प्यार, अध्यात्म-चेतना आदि बिन्दुओं को अपने भीतर समाहित किये हुए है। वे सचमुच शिष्य-भावना के कवि हैं।

खुल्हे मैदान बड़ा काव्य-संग्रह है। इसका प्रकाशन वज़ीरे हिन्द प्रेस, अमृतसर से हुआ था। इसकी रचना ग्वालियर में रहते हुए 1922 ई. के आस-पास हुई थी। इसके कुल पाँच भाग हैं। पहले भाग में '*पूरनभगत* ' की पूरी कहानी प्रवन्ध-शैली में वर्णित है। कथा के भीतर मार्मिक स्थलों पर कवि की भाव-तरलता देखते बनती है। दूसरे भाग में कुल 29 कविताएँ हैं। ये कविताएँ भिन्न मनःस्थिति की द्योतक हैं। इनमें हम पूर्ण सिंह को पशु-पक्षी, नदी, वृक्ष, आकाश, मज़दूर, हलवाहा, घर की गृहिणी आदि से प्यार करते हुए और सुख-दुख में रमते हुए पाते हैं। तीसरे भाग में दस कविताएँ हैं। इसमें हम पूर्ण सिंह को एक ऐसे पंजावी कवि की भूमिका को देखते हैं जिसे अपने पंजाब से असीम प्यार है। वह अपने पंजाब देश के कण-कण के सौन्दर्य को उल्लसित भाव से चित्रित करता हुआ हमारे सामने आता है। उसे पंजाब की नदियाँ, पंजाब के जवान, पंजाब के बाज़ार, पंजाव के उपले बनाती हुई अहीरन और पंजाव की रोमैंटिक कथाएँ आकृष्ट करती हैं। लोक-जीवन की नैसर्गिक सुषमा का यह अन्यतमय चितेरा लोक-गंधी कवि की भूमिका अदा करता हुआ प्रतीत होता है। चौथे भाग में कुल 21 कविताएँ हैं। इसमें कवि जीवन और प्रकृति के चितेरे के साथ ही ईश्वरोन्मुख

प्रेम की दिव्य-चेतना से भावित भी है। कभी उसे सब जगह और सबमें ईश्वर की झलक मिलती है। कभी वह अनुभव करता है कि उसका प्रिय उसके पास से निकल गया है। और कभी वह उसके वियोग की व्यथा से आकुल और आहत होता है। पाँचवें भाग में कुल एक कविता है—*जंगली फूल*। इस एक कविता को पुस्तक का एक भाग शायद इसलिए मान लिया गया कि इसकी प्रकृति कुछ भिन्न है। मानव-जीवन की आपाधापी से अलग जंगल में खिला हुआ फूल प्रभु की चिन्मयता का एकान्त प्रतीक है। *खुल्हे मैदान* की *भाव-भूमि, खुल्हे घुंड* की तुलना में अधिक वैविध्यपूर्ण है।

खुल्हे आसमानी रंग की रचना लाहौर से साठ मील दूर शेख़पुरा के जंगली इलाक़े में रहकर की गयी थी। यहाँ पूर्ण सिंह ने तन्मय होकर ग्रामीण जीवन के छोटे-छोटे दृश्यों का निरीक्षण किया है। इस संग्रह की कविताओं में इन्द्रधनुषी आभा भी है और आकाश का अनंत विस्तार भी। शायद इसीलिए इसका नाम *खुले आसमानी रंग* रखा गया है। इस समय तक आते-आते पूर्ण सिंह लौकिक जगत् के पूरे मृण्मय विस्तार में चिन्मय तत्त्व की झलक देखने लगे हैं। यहाँ अणु और विभु का भेद समाप्त हो गया है। यह काव्य-संग्रह पूर्ण सिंह के दिवंगत होने के बहुत बाद साहित्य अकादेमी दिल्ली, द्वारा पूर्ण सिंह की धर्मपत्नी श्रीमती माया पूर्ण सिंह द्वारा रचित *पूर्ण सिंह : जीवनी ते कविता* में सम्मिलित करके प्रकाशित किया गया है।

हिन्दी रचनाएँ

हिन्दी में पूर्ण सिंह ने सबसे कम लिखा है। यदि उन्होंने हिन्दी में भी कविताएँ लिखी होतीं तो 'छायावादी युग' का आरम्भ कुछ और पहले हो गया होता। पूर्ण सिंह पंजाबी के रहस्यवादी कवि माने जाते हैं। उनकी वही रहस्यवादी काव्य-चेतना हिन्दी में कुछ पहले अवतरित हो गयी होती। उनके कुल छह निबन्ध हिन्दी में प्रकाशित हुए हैं। *सच्ची वीरता* (जनवरी-फ़रवरी 1909 ई.), *कन्यादान* (अक्टूबर 1909 ई.), *पवित्रता* (दिसम्बर 1909-जनवरी 1910 ई.), *आचरण की सभ्यता* फ़रवरी-मार्च 1912 ई.), *मज़दूरी और प्रेम* (सितम्बर 1912 ई.), *अमेरिका का मस्त योगी वाल्ट ह्विटमैन* (मई 1913 ई.)। इन छह निबन्धों में भी *'पवित्रता'* अधूरा है। जहाँ इसका अन्त हुआ है वहाँ 'इति पूर्वार्धम्' लिखा है। पूर्ण सिंह नागरी लिपि में ठीक से नहीं लिख पाते थे। वे फ़ारसी लिपि

में लिखते थे और सम्पादक उसे नागरी में लिप्यन्तरित करके प्रकाशित करते थे। इसीलिए प्रायः प्रयोगों में एकरूपता नहीं मिलती।

उनके इन थोड़े-से निबन्धों ने उन्हें हिन्दी-साहित्य में अमर कर दिया है। इन निबन्धों में उनका कवि-रूप भी पूरी तरह मूर्त हुआ है। कवि रूप में वे सार्वभौम चेतना के कवि हैं। उनकी यह चेतना इन निबन्धों में भी विद्यमान है।

पूर्ण सिंह का लगभग आधा साहित्य अभी अप्रकाशित है। निश्चय ही इनके स्तर और प्रतिभा के रचनाकार उस समय पूरे भारत में विरल थे। समीक्षकों ने इन्हें रवीन्द्रनाथ ठाकुर और इक़बाल की श्रेणी में रखकर इनके साथ न्याय ही किया है।

5

निबन्धकार पूर्ण सिंह

हिन्दी में पूर्ण सिंह के निबन्धों के प्रकाशित होने के पूर्व निवन्ध-साहित्य का अच्छा विकास हो चुका था। भारतेन्दु-काल में निबन्ध-रचना सबसे अधिक हुई थी। स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस दिशा में मार्ग-दर्शन किया था। प्रतापनारायण मिश्र और वालकृष्ण भट्ट ने निबन्ध-साहित्य को पूरी शक्ति से समृद्ध किया था। द्विवेदी-युग में *सरस्वती* के प्रकाशन के वाद गम्भीर और विविध ज्ञान-क्षेत्रों से सम्बद्ध निवन्धों के लेखन का सुनियोजित प्रयास आरम्भ हुआ। जिस समय पूर्ण सिंह *सच्ची वीरता* और *कन्यादान* लिख रहे थे लगभग उसी समय आचार्य शुक्ल का *कविता क्या है ?* निवन्ध भी लिखा गया था। 1909 ई. में *सरस्वती* में ही ये तीनों निवन्ध प्रकाशित हुए हैं। स्वयं आचार्य द्विवेदी पूरी शक्ति से हिन्दी के ज्ञान के साहित्य को समृद्ध करने में लगे हुए थे। उन्होंने व्यक्ति-व्यंजक निबन्धों की दिशा को गम्भीर, विषय-प्रधान और उपयोगी विचारात्मक निबन्धों की ओर मोड़ दिया था। ऐसे समय में पूर्ण सिंह के निबन्धों का प्रकाशन हिन्दी-निबन्ध-साहित्य के इतिहास में एक घटना थी। अब तक हिन्दी-निबन्ध-साहित्य में समाज-सुधार, देश-प्रेम, जातीय एकता, पारंपरिक सांस्कृतिक उपलब्धियों पर गर्व, सत्ता-विरोध, आर्थिक दुर्दशा और नवयुग के वैज्ञानिक ज्ञानालोक के ग्रहण और स्वीकार की भावनाओं का संचार तो हो चुका था किन्तु उस सार्वभौम मानवीय एकता का समर्थन करने वाली स्वच्छन्द भावपूर्ण रहस्यबोधात्मक नैतिक, धार्मिक चेतना का उसमें सर्वथा अभाव था जिसे अपनी अपूर्व स्वच्छन्द और लाक्षणिक चित्र-भाषा-शैली में मूर्त करते हुए पूर्ण सिंह हिन्दी में अवतरित हुए थे। इसीलिए उनके कुछ निबन्धों में

कई-कई पृष्ठों तक चलने वाली मुक्त मनोलहरी का प्रतिपाद्य विषय से ऊपरी दृष्टि से कोई सम्बन्ध न होने पर भी सम्पादक आचार्य द्विवेदी की नीली पेंसिल इन निबन्धों की पंक्तियों पर नहीं फिरी और निबन्धों में चुस्त भाषा के भीतर विचारों की एक पूरी गूढ़ गुंफित परम्परा को महत्त्व देने वाले आचार्य शुक्ल ने भी भाषा और भाव की नई विभूति लेकर आने वाले इन निबन्धों का स्वागत किया।

एक निबन्धकार के रूप में पूर्ण सिंह का व्यक्तित्व हिन्दी में ही निखर कर सामने आया है। पंजाबी में उनके निबन्धों का संग्रह *खुले लेख* तो बहुत बाद में सन् 1929 में प्रकाशित हुआ। हिन्दी में उनका पहला निबन्ध *'सच्ची वीरता'* है। इसमें पूर्ण सिंह ने महात्मा, साधु और वीर को एक ही श्रेणी में रखा है। उसके गुणों की चर्चा करते हुए उन्होंने उसे धीर, गम्भीर, आज़ाद, शान्त, सत्वगुणी और परोपकारी बताया है। सच्चे वीरों का उल्लेख करते हुए उन्होंने एमर्सन, मंसूर, मुहम्मद पैगम्बर, शम्स तबरेज, शंकराचार्य, लूथर, ओशियो और ईसा मसीह को आदर्श रूप में उपस्थित किया है। उन्होंने बताया है कि सच्चा वीर आत्मोत्सर्ग में विश्वास करता है। वह हिंसक होकर दूसरे पर प्रहार नहीं करता, शान्ति और धैर्य के साथ अपने प्राण निछावर कर देता है।

उनके अनुसार वीरता का विकास युद्ध में ही नहीं प्रेम, साहित्य और संगीत के क्षेत्रों में भी होता है। 'वीरता' एक ऐसी प्रेरणा, एक ऐसी सहजानुभूति या 'इन्सपिरेशन' है कि न उसे कहीं किसी कारख़ाने में उत्पन्न किया जा सकता है, न उसका अनुकरण हो सकता है। वीर पुरुष का हृदय इतना विशाल होता है, कि वह सभी प्रकार की द्वैत बुद्धि का अतिक्रमण करके मानवमात्र के साथ पूर्ण अद्वैत स्थापित कर लेता है। इसीलिए वह सबका और सब उसके हो जाते हैं। कहना न होगा कि वीरता की जो अवधारणा सरदार पूर्ण सिंह के मन में है उसका स्रोत आध्यात्मिक है। इसी निबन्ध में वे कहते हैं–"दुनिया किसी कूड़े के ढेर पर नहीं खड़ी कि जिस मुर्गे ने बाँग दी, वही सिद्ध हो गया। दुनिया धर्म और अटल आध्यात्मिक नियमों पर खड़ी है।"[1] जिस एमर्सन को उन्होंने अमेरिका का ऋषि कहा है। उसकी मूल प्रवृत्ति आध्यात्मिक थी। उसके दर्शन को परमात्मतत्त्ववादी कहा गया है। उनके द्वारा उल्लिखित अन्य आदर्शवीर भी अपने समय के आदर्शवादी, आध्यात्मिक और रहस्यवादी हैं।

---

1. *सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबन्ध*, पृ. 65

कन्यादान उनका दूसरा निबन्ध है। इसका दूसरा नाम *नयनों की गंगा* है। इस निबन्ध में भी पूर्ण सिंह एक आदर्शवादी लेखक के रूप में सामने आते हैं। वे कन्यादान और पातिव्रतधर्म दोनों को पवित्र मानते हैं। वे कन्यादान की प्राचीन आर्य-परम्परा का समर्थन करते हैं। शकुन्तला-दुष्यन्त, सीता-राम, दमयन्ती- नल, सावित्री-सत्यवान के दाम्पत्य सम्बन्धों को आदर्श मानते हैं। यूरोपीय साहित्य में जूलियट और रोमियो तथा कौसेट (Cosett) और मैरियस[1] (Marius) के प्रणय-बन्धन की प्रशंसा करते हैं और फ़ारसी प्रेमाख्यान की विश्व-प्रसिद्ध नायिका लैला तथा पंजाबी प्रेमाख्यानों की नायिकाओं--सोहनी और हीर के हृदय-दान का समर्थन करते हैं। यूरोप में वर्तमान कन्यादान की परम्परा को खोखला मानते हैं और अनुभव करते हैं कि आजकल यूरोप में कन्यादान की आध्यात्मिक बुनियाद तोड़ दी गयी है। वे उन लोगों का विरोध करते हैं, जो यह कहते हैं कि कन्या कोई बेजान वस्तु नहीं है कि उसका दान किया जाय। ऐसे लोगों के विषय में उनका कहना है—"यह अल्पज्ञता का फल है। सीधे और सच्चे रास्ते से गुमराह होना है। ये लोग गम्भीर विचार नहीं करते। जीवन के आत्मिक नियमों की महिमा नहीं जानते। क्या प्रेम का नियम सबसे उत्तम और बलवान नहीं है ? क्या प्रेम में अपनी जान को हार देना सबके दिलों को जीत लेना नहीं है ?"[2]

वे कन्यादान की आर्य परम्परा की मुक्त रूप से प्रशंसा करते हुए कहते हैं—"आर्य कन्या का विवाह हिन्दू-जीवन में एक अद्भुत आध्यात्मिक प्रभाव पैदा करने वाला समय होता है जिसे गहरी आँख से देखकर हमें सिर झुकाना चाहिए।"[3] इन थोड़ी-सी बातों को अपनी उद्धरण वहुल शैली में आवेग पूर्ण उच्छलित मनस्तरंगों के सहारे वे लगभग बीस पृष्ठों तक खींच ले गये हें।

तीसरा निबन्ध है *'पवित्रता'*। यह निबन्ध अधूरा है। जहाँ समाप्त हुआ है वहाँ लिखा है 'इति पूर्वार्द्धम्'। इस निवन्ध में उप-शीर्षक लगाये गये हैं। 'ब्रह्म क्रांति', 'पवित्रता का स्वरूप' आजकल के उपदेश किये जा रहे पवित्रता के साधनों पर एक साधारण दृष्टि, त्याग, वैराग्य और इनके अनर्थ, 'ब्रह्मचर्य' का उलटा उपदेश, 'दान', 'तप', 'ज्ञान', इन आठ उपशीर्षकों को देखकर सोचा जा सकता है कि पूरा निबन्ध व्यवस्थित होगा, किन्तु ऐसा है नहीं। लेखक ने पवित्रता शब्द को पूरे आध्यात्मिक विकास का पर्याय बना दिया है। इस सारे विश्व को ब्रह्म रूप

---

1. विक्टर ह्यूगो के प्रसिद्ध उपन्यास *ले मिजरेबुल* की नायिका और नायक
2. *सरदार पूर्ण सिंह, अध्यापक के निबन्ध*, पृ. 77-78
3. वही, पृ. 83

मानकर जड़-चेतन सभी में अलक्ष्य प्रियतम के स्वरूप का दर्शन करना ही 'ब्रह्म-क्रांति' है और यही पवित्रता है। लेखक के अनुसार प्रकृति के मुक्त-सौन्दर्य में, भर्तृहरि के ध्यान में, अपनी गति में प्रवहमान दुग्धधवला नदी की तरंग-माला में, प्रातःकालीन उषा वेला के निर्मल प्रकाश में, माता की वत्सलता में, भाई की प्रतीक्षा करती हुई बहन की स्नेहिल चिन्ता में, सत्यवान और सावित्री के तपः, पूत पवित्र दाम्पत्य में, बालक ध्रुव की समाधि में, प्रिया के वियोग में व्याकुल प्रिय की कातरता में, गार्गी की तेजस्विता में, मीरा के प्रेम में, गौतम बुद्ध के त्याग में, यही नहीं भोली-भाली भेड़ों की सहज मुद्रा में और वीरगति को प्राप्त सवार की मृत्यु की सूचना देने के लिए भागकर आये हुए घोड़े की स्वामिभक्ति में, पवित्रता की अनुभूति की जा सकती है। लेखक की दृष्टि में त्याग और वैराग्य पवित्रता के साधन माने जाते हैं, किन्तु आज इनके नाम पर जिसे देखिये वही वैरागी बनकर समाज को ठग रहा है। ब्रह्मचर्य की साधना ने स्त्री-जाति का तिरस्कार करना सिखाया और यह तिरस्कार अनर्थ का कारण बन गया। इसी प्रकार दान-तप और ज्ञान भी आज अपनी मूल भावना से अलग दिखावा बन गये हैं। अन्त में निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए लेखक कहता है—"इस वास्ते बनो पहले साधारण मनुष्य, जीते-जागते मनुष्य, हँसते-खेलते मनुष्य, नहाये-धोये मनुष्य, प्राकृतिक मनुष्य, जान वाले मनुष्य, पवित्र हृदय, पवित्र बुद्धि वाले मनुष्य, प्रेम भरे, रस भरे, दिल भरे, प्राण भरे मनुष्य।"[1]

इस प्रकार यह निबन्ध ब्रह्म-क्रांति की साधना से आरम्भ होकर सहज मनुष्यता की उपलब्धि की साधना तक आकर समाप्त होता है। लेखक की दृष्टि में अभेद दृष्टि ही सच्ची ब्रह्मक्रांति है और उसे प्राप्त करके ही मनुष्य मात्र की एकता का अनुभव तथा सहज मनुष्यता की उपलब्धि सम्भव है।

चौथा निबन्ध *आचरण की सभ्यता* है। इस पूरे निबन्ध में लेखक ने मूलतः यह प्रतिपादित किया है कि मनुष्य का आचरण ही उसे ऊपर उठाता है। जो आचरण-शील है उसी की आत्मा में बल होता है। पुस्तक-ज्ञान से प्राप्त अनेक ऊँचे विचार तब तक निरर्थक हैं जब तक वे आचरण में नहीं उतारे जाते। आचरण-शील व्यक्ति उपदेश नहीं देता। ज्ञान का प्रदर्शन नहीं करता, वह सहज भाव से अपने दायित्व का निर्वाह करता है। लेखक के अनुसर आचरण की सभ्यता या यों कहिए कि उच्चतम मूल्यों की चरितार्थता की साधना एक दिन

1. *सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबन्ध*, पृ. 115

में नहीं हो जाती, सहस्रों वर्षों की साधना के बाद कहीं मनुष्य जाति ने प्रेम, ममता, सद्भाव, उपकार, दया आदि मूल्यों को आचरण में उतारना सीखा होगा। यह अवश्य है कि आचरण का प्रभाव जितना व्यापक, गहरा और स्थायी होता है, उतना धर्मग्रंथों के कोरे उपदेशों का नहीं। वाणी के द्वारा उपदेश के रूप में भाषा-विशेष में कही गयी बातें वहीं तक समझी जाती हैं, जहाँ तक उस भाषा की व्याप्ति होती है, किन्तु आचरण की भाषा चराचर आप ही आप समझ लेते हैं। धर्म के आचरण की प्राप्ति कभी ऊपरी आडम्बरों से नहीं हो सकती। यदि ऐसा सम्भव होता तो आजकल सभी भारतवासी सूर्य के समान शुद्ध आचरण वाले हो जाते। पूरे निबन्ध में लेखक ने उपर्युक्त बातों को ही विविध प्रकार से समझाने का प्रयत्न किया है।

इस निबन्ध की एक बड़ी विशेषता यह है कि इसमें लेखक ने इतिहास की द्वन्द्वात्मक पद्धति को समझा है। और उसी के अनुसार आचरण के विकास को स्पष्ट किया है। वे साफ़ शब्दों में कहते हैं कि अपवित्रता के भीतर से पवित्रता और अधर्म के भीतर से धर्म का विकास होता है। उन्हीं के शब्दों में—"जो कुछ जगत् में हो रहा है वह केवल आचरण के विकास के अर्थ हो रहा है। अन्तरात्मा वही काम करती है जो वाह्य पदार्थों के संयोग का प्रतिविम्व होता है। जिनको हम पवित्र आत्मा कहते हैं, क्या पता है, किन-किन कूपों से निकलकर वे अव उदय को प्राप्त हुए हैं ? जिनको हम धर्मात्मा कहते हैं, क्या पता है, किन-किन अधर्मों को करके वे धर्मज्ञान को पा सके हैं, जिनको हम सभ्य कहते हैं और जो अपने जीवन में पवित्रता को ही सब कुछ समझते हैं, क्या पता है; वे कुछ काल पूर्व बुरी और अधर्म अपवित्रता में लिप्त रहे हों ?"[1] लेखक का निष्कर्ष है—"आचरण वाले नयनों का मौन व्याख्यान केवल यह है—सब कुछ अच्छा है, सब कुछ भला है।"[2]

पाँचवाँ निबन्ध 'मज़दूरी और प्रेम' है। यह निबन्ध भी उपशीर्षकों में विभाजित है। 'हल चलाने वाले का जीवन', 'गड़रिये का जीवन', 'मज़दूर की मज़दूरी', 'प्रेम मज़दूरी' 'मज़दूरी और कला', 'मज़दूरी और फ़कीरी', 'समाज का पालन करने वाली दूध की धारा', 'पश्चिमी सभ्यता का एक नया आदर्श' जैसे उपशीर्षकों के सहारे लेखक ने विचार-सूत्रों को फैलाकर निबन्ध का ताना-बाना

1. *सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबन्ध*, पृ. 115

2. वही पृ. 122

तैयार किया है। इस निवन्ध में लेखक ने श्रम का महत्त्व प्रतिपादित किया है। उसकी दृष्टि में भोले-भाले किसानों, मज़दूरों, गड़रियों और हाथ के कारीगरों का श्रम-पूर्ण निश्छल जीवन एक तपस्या है। एक आध्यात्मिक यात्रा है, एक आहुति है जिसे देकर वह जीवन के लिए उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। उनकी कार्यनिष्ठा में ईश्वरीय प्रेम की झलक मिलती है। लेखक के शब्दों में– "मनुष्य और मनुष्य की मज़दूरी का तिरस्कार करना नास्तिकता है। विना काम, विना मज़दूरी, बिना हाथ के कला-कौशल के, विचार और चिन्तन किस काम के ? सभी देशों के इतिहासों से सिद्ध है कि निकम्मे पादड़ियों, मौलवियों, पण्डितों और साधुओं का, दान के अन्न पर पला हुआ ईश्वर-चिन्तन, अन्त में पाप, आलस्य और भ्रष्टाचार में परिवर्तित हो जाता है।"[1] लेखक के अनुसार मज़दूरी में फ़कीरी का भाव भी निहित है। मज़दूरी और फ़कीरी दोनों ही मनुष्य के विकारा के लिए आवश्यक हैं। वह ऐतिहासिक महापुरुपों का उदाहरण देते हुए कहता है–"मज़दूरी करना जीवन-यात्रा का आध्यात्मिक नियम है। जोन ऑफ़ आर्क (Joan of Arch) की फ़कीरी और भेड़ें चराना, टाल्सटाय का त्याग और जूते गाँठना, उमर ख़ैयाम का प्रसन्नतापूर्वक तम्बू सीते फिरना, ख़लीफ़ा उमर का अपने रंग महलों में चटाई आदि बुनना, ब्रह्म ज्ञानी कवीर और रैदास का शूद्र होना, गुरु नानक और भगवान श्री कृष्ण का मूक पशुओं को लाठी लेकर हाँकना सच्ची फ़कीरी का अनमोल भूपण है।[2] लेखक देश की दरिद्रता का मूल कारण श्रमिकों की उपेक्षा मानता है। उसकी दृष्टि में कारीगरों और श्रमिकों की उपेक्षा से सौन्दर्य भावना का भी ह्रास हुआ है। जिस देश के कारीगर शूद्र माने जायेंगे, तिरस्कृत होंगे, वहाँ न शिल्पकला का विकास सम्भव है, न मूर्तिकला का, न चित्रकला का। वह चेतावनी के स्वर में कहता है–"याद रखिए, बिना शूद्र-पूजा के मूर्ति-पूजा किंवा कृष्ण और शालिग्राम की पूजा होना असम्भव है।"[3] यह ध्यान देने की वात है कि ये विचार 1912 ई. में प्रकट किये गये थे। अभी तक गाँधी का अछूतोद्धार आन्दोलन कल्पना की वस्तु था।[4] निवन्ध का अंत पूर्ण सिंह ने पश्चिमी सभ्यता में आने वाले परिवर्तन का स्वागत करते हुए किया है। वे अनुभव करते हैं कि रस्किन और टॉल्सटॉय द्वारा मशीनीकरण का विरोध शुभ प्रभाव वाला

---

1. *सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निवन्ध*, पृ. 139
2. वही, पृष्ठ 143
3. वही, पृष्ठ 146
4. गाँधी जी ने 1924 ई. में अस्पृश्यता निवारण को अपना रचनात्मक कार्यक्रम बनाया था।

सिद्ध होगा और पश्चिमी सभ्यता यन्त्रों की पूजा के स्थान पर मुनष्यों की पूजा की ओर मुड़ेगी। वे कहते हैं–"मशीनें बनाई तो गयी थीं मनुष्यों का पेट भरने के लिए–मज़दूरों को सुख देने के लिए–परन्तु वे काली-काली मशीनें ही काली बनकर उन्हीं मनुष्यों का भक्षण कर जाने के लिए मुख खोल रही हैं। प्रभात होने पर ये काली-काली बलाएँ दूर होंगी। मनुष्य के सौभाग्य का सूर्योदय होगा।"[1] भारत जैसे ग़रीब देश का कलों से काम लेना घातक सिद्ध होगा। यह चेतावनी देते हुए वे कहते हैं–"भारतवर्ष जैसे दरिद्र देश में मनुष्य के हाथों की मज़दूरी के बदले कलों से काम लेना काल का डंका बाजाना होगा। दरिद्र प्रजा और भी दरिद्र होकर मर जायेगी। चेतन से चेतन की वृद्धि होती है। मनुष्य को तो मनुष्य ही सुख दे सकता है। परस्पर की निष्कपट सेवा ही से मनुष्य-जाति का कल्याण हो सकता है।"[2] इस प्रकार इस पूरे निबन्ध में श्रम और श्रमिकों की महत्ता पर बल दिया गया है। अपनी आध्यात्मिक सोच के कारण पूर्ण सिंह जी श्रम को एक आध्यात्मिक-प्रक्रिया घोषित करते हैं।

पूर्ण सिंह का हिन्दी में प्रकाशित छठा और अंतिम निबन्ध 'अमेरिका का मस्तयोगी वाल्ट ह्विटमैन' है। यह सबसे छोटा, कुल पाँच पृष्ठों का निबन्ध है। पूर्ण सिंह वाल्ट ह्विटमैन से बहुत प्रभावित थे। वे उसे अमेरिका की बहिर्मुख तत्त्वहीन सभ्यता के नरक के अन्तर्गत ब्रह्म ज्ञानरूपी स्वर्ग मानते थे। वे कहते हैं–"इसकी उपस्थिति मात्र से मनुष्य की आभ्यन्तरिक अवस्था बदल जाती है। अमेरिका की बहिर्मुख सभ्यता को लात मारकर, बिरादरी और बादशाह से बागी होकर, कालीनों को जलाकर, महलों में आग लगाकर यह कौन जाड़ा मना रहा है ? प्रभात की फेरी वाला 'जंगल का योगी' अमेरिका का स्वतंत्र और मस्त फ़कीर, वाल्ट ह्वीटमैन अपनी काव्य रचना करता हुआ जा रहा है।"[3] अमेरिकी सभ्यता को पूर्ण सिंह कलदार सभ्यता कहते हैं। इस सभ्यता में जीने वाली अमेरिकी जनता के जीवन को वे बनावटी मानते हैं। वाल्ट ह्वीटमैन उन्हें इसलिए प्रिय है कि उसने इस बनावटी मशीनी सभ्यता की शर्तों पर जीना अस्वीकार कर दिया है। उसने हिन्दुओं की ब्रह्म-विद्या और ईरान की सूफ़ी विद्या को मिलाकर एक सार्वभौम मानवतावादी अध्यात्म विद्या का प्रतिपादन किया है। लेखक के

---

1. *सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबन्ध* पृ 147
2. वही, पृ. 148
3. वही, पृ. 151

शब्दों में—"वहाँ काव्य के नृसिंह भगवान ह्विटमैन ने अपने उच्च नाद से हिन्दुओं की ब्रह्म-विद्या और ईरान की सूफ़ी-विद्या को एक ही साथ घोषित किया है। वाल्ट ह्विटमैन के मत में वह मनुष्य ही क्या जो ब्रह्मनिष्ठ नहीं। वह एक मनुष्य के जीवन में मनुष्य-मात्र का जीवन और मनुष्य-मात्र के जीवन में एक मनुष्य का जीवन देखता है। उसके काव्य का प्रवाह आकाशवत् सार्वभौम है।"[1] निबन्ध का अन्त लेखक ने ह्विटमैन की कविता *पोयम्स ऑव ज्वाय* (Poems of Joy) का एक अंश उद्धृत करते हुए किया है। कविता की अंतिम कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

ओः इस अनादि भौतिक पीड़ा को—इस प्रेम-दर्द को
दरसाऊँ कैसे अपनी कविता में।
कैसे बहाऊँ इस आत्मगंगा के नीर को ;
कैसे बहाऊँ प्रेमाश्रुओं को अपनी कविता में।
जो पृथ्वी है सो हम हैं;
जो तारे हैं, सो हम हैं;
ओहो ! कितनी देर हमने उल्लुओं के स्वर्ग में काट दी।

हम शिला हैं, पृथ्वी में धँसे हैं
हम खुले मैदान हैं, साथ-साथ पड़े हैं;
हम हैं दो समुद्र जो आन मिले हैं।
पुरुप का शरीर पवित्र है,
स्त्री का शरीर पवित्र है,
जल पवित्र है,
धरती पवित्र है,
आकाश पवित्र है,
गोबर और तृण की झोंपड़ी पवित्र है,
प्रेम पवित्र है,
सेवा पवित्र है,
अर्पण पवित्र है,
लो सब अपने आप को तुम्हारे हवाले करता हूँ।
कोई भी हो, तुम सारी दुनिया के सामने मेरे हो रहो।[2]

---

1. *सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबन्ध* पृ. 152
2. वही पृ. 153

निश्चय ही ह्विटमैन की ऐसी कविताओं से पूर्ण सिंह को प्रेरणा मिलती रही होगी। यहाँ यह स्मरणीय है कि पूर्ण सिंह के गुरु स्वामी रामतीर्थ भी वाल्ट ह्विटमैन से प्रभावित थे। *अलिफ़* पत्रिका के अंतिम अंक में उन्होंने वाल्ट ह्वीटमैन की अतुकांत रचना-पद्धति का अनुकरण करते हुए उर्दू में कविता लिखी थी।"[1]

सम्भव है स्वामी रामतीर्थ से प्रेरित होकर ही पूर्ण सिंह वाल्ट ह्विटमैन जैसे मुक्त और मस्त-मौला कवि की ओर आकृष्ट हुए हों।

पंजावी निवन्ध

पूर्ण सिंह ने पंजावी में जो लेख लिखे हैं उनमें भी उनका भावुक, स्वच्छन्द और सहज व्यक्तित्व प्रकट हुआ है। यहाँ भी उनके विचार का विषय नैतिक और आध्यात्मिक है। प्यार, मित्रता, कविता, कला, धर्म, यश और विनम्रता आदि विपयों पर उन्होंने एक आदर्शवादी और संवेदनशील विचारक के रूप में ही अपनी भावनाएँ व्यक्त की हैं। यह लेख उस समय लिखे गये थे, जब वे अपना सब कुछ दाँव पर लगा कर जांरन वाला (Jarnwala) में रोशा घास की खेती कर रहे थे। इस समय तक उनके व्यक्तित्व में युवा अवस्था का वह उत्साह है और जोश नहीं रह गया था जिसकी अभिव्यक्ति उनके हिन्दी के निवन्धों हुई है। उनमें प्रेम है, त्याग है, किन्तु पाठकों को जगाकर, झकझोर कर भावावेग में बहा ले जाने वाली उल्लसित मनो लहरी और उच्छ्वसित विचार-प्रवाह मन्द पड़ गया है। अब वे अपने मन से बात करते हैं। उससे कहते हैं कि वह शान्त हो जाय। ख़ाली घोड़े दौड़ाना छोड़ दे। 'अपने मन नाल गल्लाँ' (अपने मन से वातें करना) निबन्ध में वे अपने मन को सम्वोधित करके कहते हैं—"ओ मेरे प्रिय मन ! तुम आराम क्यों नहीं करते, चैन से क्यों नहीं बैठते ? अब तुम ख़याली घोड़े दौड़ाना बन्द कर दो। बैल की भाँति शान्त और मंथर गति से आगे वढ़ने वाली ज़िन्दगी के अतिरिक्त शेप सब मृत्यु है। जिसे तुम सुख समझते हो वह दुख है। जिसे तुम सफलता समझते हो, वह सच्चाई से दूर होना है। जिसे तुम प्रगति और विकास समझते हो, वह जीवन रूपी हीरे की चमक को प्रभावहीन करना है। साफ़ तौर पर पूछा जाय तो तुम क्यों हमारी पगड़ी को अनेक रंगों से सँवारते हो ? मेरे भीतर झाँककर देखने पर क्या तुम्हें एक भी क़ली खिली हुई दिखाई देती

1. *द स्टोरी आव स्वामी राम*, पृ. 37

है ? जिसे तुम जीवन समझते हो, वह अन्ततः यही तो है।" अपने मन से शान्त हो जाने का आग्रह करने वाले पूर्ण सिंह को अब दीपशिखा की तरह शान्त भाव से जलते हुए प्रिय की स्मृति में अपने को उत्सर्ग कर देने वाले चित्र मोहक लगते हैं। वे अपने 'इक जापानी नायिका दी जीवनी कथा' शीर्षक अत्यन्त भावपूर्ण कथात्मक निबन्ध में जापानी नायिका की बड़ी ही मर्मस्पर्शी कथा कहते हैं–कथा इस प्रकार है–"एक वेश्या अत्यन्त सामान्य व्यक्ति के प्रेम में अपना हृदय समर्पित कर देती है और सारे राजकीय प्रलोभनों को त्याग कर उसके साथ नगर से दूर एकान्त पहाड़ी पर जाकर रहने लगती है। उसके प्रेमी की मृत्यु हो जाती है। प्रिय की स्मृति को सँजोये वह एकान्त जीवन व्यतीत करती है और प्रतिदिन रात्रि में उसकी स्मृति में भावपूर्ण नृत्य प्रस्तुत करती है। एक दिन एक गुमनाम कलाकार रात्रि के अँधेरे में भटकता हुआ उसकी कुटिया में आता है। वह छिपकर चुपचाप नृत्य देखता है। उससे प्रेरित होकर चला जाता है। चालीस साल बीत जाते हैं। अब वह शाहंशाह द्वारा सम्मानित एक महान् कलाकार हो गया है। वह वेश्या को आश्वस्त करने आता है कि अब उसकी (वेश्या की) ग़रीबी का अन्त हो जायेगा। वेश्या की प्रार्थना पर वह उसके उस भाव-पूर्ण नृत्य को पेंट करता है जिसे उसने चालीस वर्ष पूर्व छिपकर देखा था। पहले इसके कि वह वृद्धा वेश्या को यह सूचना दे कि अब उसके अच्छे दिन लौट आये हैं, वह अपने प्राण त्याग देती है।" इस कथा का शब्द-चित्र पूर्ण सिंह उसी कलाकार के माध्यम से इस प्रकार अंकित करते हैं–"प्रसिद्ध कलाकार ने सूनी झोंपड़ी के दरवाज़े को खटखटाया पर कोई उत्तर नहीं मिला। उसने दरवाज़े को धीरे-से खोला। कोई आवाज़ सुनाई नहीं पड़ी। तब वह झोपड़ी के भीतर प्रविष्ट हुआ। उसकी आँखों में 40 वर्ष पूर्व के दृश्य कौंध गये। उसे रोमांच हो आया। चालीस वर्ष पूर्व वह गुमनाम कलाकार अपना रास्ता भूलकर भटकता हुआ रात्रि के अँधेरे में गिरता-पड़ता उस प्रसिद्ध वेश्या के एकान्त पहाड़ी पर स्थित झोपड़े के द्वार पर आया था। उसने शान्त उपासना-गृह के समक्ष प्रिय की स्मृति को समर्पित रातभर चलने वाला वेश्या का वह अपूर्व भाव-नृत्य चुप-चाप देखा था और चला गया था। नृत्य से उसे दिव्य प्रेरणा प्राप्त हुई थी। चालीस वर्ष पूर्व वह दृश्य उसकी भावना को झंकृत कर उठा। उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। वृद्धा वेश्या एक कोने में जीर्ण-शीर्ण गद्दे पर सिकुड़ी हुई बैठी थी। लगा जैसे वह सो रही है। उसके सामने की जीर्ण दीवार के ताखे में एक छोटा-सा बुद्ध मंदिर था। ताखे में उसके दिवंगत प्रेमी के कुछ स्मृति-चिह्न रखे थे। एक दीपक जल रहा था।

ताखे के मंदिर के सामने वह रेशमी पेंटिग लटक रही थी जिसे कलाकार ने एक दिन पूर्व उसकी प्रार्थना पर बनाया था और जिसे चालीस वर्षों पूर्व कलाकार ने छुपकर चुपचाप देखा था। पेंटिंग उस पोशाक से सजाई हुई थी, जिसे पहन कर वह राजदरबार में नृत्य करती थी। झोंपड़ी के भीतर घोर दरिद्रता का दृश्य था। फटे हुए चिथड़ों, भीख माँगने वाले कटोरे और टेक कर चलने वाली लकुटी के अतिरिक्त वहाँ निजी सामान के नाम पर कुछ भी नहीं था। कलाकार वृद्धा वेश्या को जगाने के लिए आतुर था क्योंकि वह यह बताने आया था कि अब उसके बुरे दिनों का अन्त हो गया है। उसने उसका नाम लेकर धीरे-धीरे चार बार पुकारा। कोई उत्तर नहीं मिला। सहसा उसे लगा कि अब वह दुनिया को छोड़ चुकी है। उसने उसके चेहरे को ग़ौर से देखा और चकित रह गया। एक दिन पूर्व उसके चेहरे पर जो झुर्रियाँ और थकान के चिह्न थे वे ग़ायब हो चुके थे। उनके स्थान पर चालीस वर्ष पूर्व का देखा चेहरा उभर आया था। और उस पर अपूर्व निर्विकार शान्ति छाई हुई थी।'' अपने निबन्धों में कथात्मक शैली का प्रयोग पूर्ण सिंह ने पहले भी किया है। किन्तु यह निबन्ध तो पूरा-का-पूरा कथात्मक है। पवित्र प्रेम की सात्विक ज्योति को विकीर्ण करने वाली यह कथा जिस आध्यात्मिक वातावरण की सृष्टि करते हुए समाप्त हुई है, वह अपूर्व है। पंजाबी में लिखे हुए उनके अन्य निबन्धों में भी चेतना का यही स्वरूप लक्षित होता है, चाहे वह कवि के हृदय का उद्घाटन हो, चाहे वतन के प्यार की अभिव्यक्ति। यह अवश्य है कि हिन्दी में लिखे आरम्भिक निबन्धों में उच्छलित मनोलहरी का प्रवाह वहाँ कुछ मर्यादित हो गया है और उसकी गति मंद-मंथर हो गयी है।

अन्तश्चेतना

पूर्ण सिंह के निबन्धों की अन्तश्चेतना प्रायः एक ही है। नैतिक बोध का एक ही धरातल सभी निबन्धों में देखा जा सकता है। जीवन के सभी व्यापार उनकी दृष्टि से उच्चतर नैतिक बोध से अनुशासित होने चाहिए। मनुष्यता बड़ी चीज़ है। व्यावसायिक सभ्यता जन्य सारा ऊपरी ताम-झाम व्यर्थ है। आचरण बड़ी चीज़ है। कोरा उपदेश व्यर्थ है। जप, तप, दान, धर्म, ज्ञान सभी चरितार्थता के अभाव में महत्त्वहीन हो जाते हैं। जहाँ सच्चाई है, सरलता है, भोलापन है, आस्था है, प्यार है, वहीं ईश्वर है। काव्य, कला, सौन्दर्य-बोध, धर्म, दर्शन सभी व्यर्थ हैं, यदि इनमें ईश्वर के अस्तित्व का आभास नहीं है। वस्तुतः पूर्ण सिंह सार्वभौम चेतना

के रचनाकार हैं। कला दृष्टि परमगुरु ईश्वर के प्रति एकान्त समर्पण का संवेदनात्मक विस्तार मात्र है। यही विस्तार उनकी सभी रचनाओं में लक्षित हैं। चाहे वह निबन्ध हो, चाहे कविता या कहानी।

भाषा और शैली

पूर्ण सिंह के व्यक्तित्व में प्राचीनता और नवीनता, पूरब और पश्चिम, विज्ञान और कला, स्वच्छन्दता और आभिजात्य, सहजानुभूति और प्रयोग-सिद्ध ज्ञान-दृष्टि, देश-प्रेम और विश्वमानवता, लोकानुभूति और औदात्य तथा संन्यास और गार्हस्थ्य आदि अन्तर्विरोधों का अद्‌भुत सामंजस्य है। उनकी भाषा और शैली इस संश्लिष्ट और प्रभावी व्यक्तित्व की सशक्त रचनात्मक प्रतिमूर्ति है। उनकी भाषा और शैली की सारी विशेषताएँ उनके व्यक्तित्व से जुड़ी हुई हैं।

पूर्ण सिंह की भाषा और शैली की कुछ ऐसी सामान्य विशेषताएँ हैं जिन्हें उनके भावों और विचारों के प्रवाह-क्रम में सुगमता से लक्षित किया जा सकता है किन्तु कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो ध्यान देने पर उनकी शैली के संरचनात्मक वैशिष्ट्य को उजागर करती हैं। पहले हम उनकी भाषा के स्वरूप और विषय-प्रतिपादन शैली की सामान्य विशेषताओं पर विचार करेंगे।

पूर्ण सिंह का अंग्रेज़ी भाषा पर अच्छा अधिकार था। पंजाबी उनकी मातृभाषा थी। उर्दू, फ़ारसी और संस्कृत का उन्होंने अध्ययन किया था। इसलिए जब वे अपने को स्वच्छन्द भाव से व्यक्त करते हैं, तब इन सभी भाषाओं के शब्द यथास्थान उसकी मनःस्थिति के अनुकूल प्रयुक्त होते रहते हैं। वे भाषा की शुद्धता नहीं उसकी शक्ति के हिमायती हैं। इसलिए उनकी भाषा में 'उदार हृदया', 'धन-सम्पन्ना', 'अहं ब्रह्मास्मि', 'आलंकारिक', 'द्वैत-दृष्टि', 'निरवलम्बता', 'सर्वंखलुइदंब्रह्म', 'ब्रह्मक्रांति', 'तत्त्ववित्', 'ब्रह्मकेन्द्र', 'धर्माङ्कुर 'उन्मदिष्णु' जैसे संस्कृत के, 'अनलहक़', 'शाहेदिल', 'इलहाम', 'मरकज़', 'हर्फ़', 'औलिया', 'कुदरत', 'पैग़म्बर', 'अल्लाह' जैसे उर्दू के और जार्ज, हाल्ट, क्रूसेड्स, ड्राइंग हाल, मोनोगेमी, 'पोयम', 'ज्वाय', 'लेडी आफ़ द लेक', जैसे अंग्रेज़ी के शब्द बिना किसी हिचक के धड़ल्ले के साथ प्रयुक्त हुए हैं। शब्द ही नहीं वे बीच-बीच में अंग्रेज़ी के वाक्यांश और परिच्छेद भी उद्‌धृत करते चलते हैं। हिन्दी के शब्दों में उपयुक्त अर्थ व्यक्त करने की क्षमता का जहाँ उन्हें अभाव दिखाई देता है वहाँ उसके साथ कोष्ठक में अंग्रेज़ी शब्द रख देते हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि वे

कथन को ठीक-ठीक अर्थ देने वाला बनाना चाहते हैं, इसके लिए शब्द उन्हें चाहे जहाँ से लाना पड़े। इंसी प्रकार अनेक अवसरों पर अपने कथन की पुष्टि के लिए वे उर्दू के शेर उद्धृत कर देते हैं। उनकी भाषा पर पंजाबी का प्रभाव भी है। इसलिए कहीं-कहीं शब्दों का उच्चारण पंजाबी हो गया है। उदाहरण के तौर पर उन्होंने बिखेरना के स्थान पर 'बखेरना', पेंसिल के स्थान पर 'पेंसल' आशिक के स्थान पर 'आशक' पादरी के स्थान पर 'पादड़ी', 'शालिग्राम' के स्थान पर 'शालग्राम' और 'सुंदर नौजवान' के स्थान पर 'सोहने नौजवान' शब्दों का प्रयोग किया है। इनके साथ ही अनेक अवसरों पर पंजाबी लोक-कथाओं और पंजाबी कविताओं को उद्धृत करना तथा कहीं-कहीं—"उसका मृत्यु संस्कार आपने करना है", जैसे वाक्यों का प्रयोग पंजाबी प्रभाव का सूचक है। वाक्य-रचना पर अंग्रेज़ी का प्रभाव सबसे अधिक है। उदाहरण के लिए वे लिखते हैं—"जहाँ जाते हैं घास की एक झोंपड़ी बना लेते हैं।" एक घास की झोंपड़ी लिखने के पीछे 'ए ग्रास हट' की मानसिकता काम कर रही है। इस प्रकार के और उदाहरण भी दिये जा सकते हैं। कहीं-कहीं इनके वाक्यों में व्याकरण की अशुद्धियाँ भी मिलती हैं। उदाहरण के लिए 'नमस्कार किया' के स्थान पर 'नमस्कार की' (पवित्रता), 'युवती कन्या' के स्थान पर 'युवाकन्या' (कन्यादान), 'विद्या उसने नहीं पढ़ी' के स्थान पर 'विद्या वह नहीं पढ़ा' (आचरण की सभ्यता) जैसे प्रयोग चिन्त्य हैं। इसी प्रकार इनका एक वाक्य है—"ईसा को ऐसा ही उपदेश करते हार हुई। (पवित्रता) यहाँ 'ईसा को' के स्थान पर 'ईसा की' होना चाहिये। यथा—उच्चारण शब्द प्रयोग करने की धुन में वे प्रायः 'सकता' के स्थान पर 'सक्ता' का प्रयोग करते हैं। उदारहरण के लिए—ब्रह्मचर्य अब इस अपवित्र देश में बिना माता-भक्ति के, कन्या-पूजा के, कभी भी स्थापित नहीं हो सक्ता। इस देश में क्या कहीं भी ऐसा नहीं हो सक्ता, (पवित्रता)। उच्चारण सम्बन्धी कुछ त्रुटियाँ तो फ़ारसी लिपि के प्रयोग के कारण भी हुई होंगी। पूर्ण सिंह अपने निबन्ध प्रायः फ़ारसी लिपि (उर्दू लिपि) में लिखते थे। पत्रिकाओं के सम्पादक उनका नागरी में लिप्यन्तरण कराते थे। इस कारण भी शब्दों के स्वरूप में त्रुटियों का होना स्वाभाविक है। भाषा की सामान्य भूलों के अतिरिक्त कहीं-कहीं पूर्ण सिंह अस्पष्ट भी हो गये हैं। उदाहरण के लिए उनका एक सूत्र वाक्य है—"मज़दूरी तो मनुष्य के समष्टि रूप का व्यष्टि रूप परिणाम है।" (मज़दूरी और प्रेम) यहाँ वे क्या कहना चाहते हैं ? स्पष्ट नहीं है। मनुष्य का समष्टि रूप मानवता हो सकता है। क्या पूर्ण सिंह यह कहना चाहते हैं कि मज़दूर के रूप में मानवता मूर्तिमान है। इस प्रकार

की कोई भी व्याख्या 'शायद' विशेषण लगाकर ही करनी पड़ेगी। उनके मूल मन्तव्य के विषय में अनिर्णय की स्थिति बनी रहेगी। इन त्रुटियों और स्खलनों के बावजूद पूर्ण सिंह की भाषा का सामान्य स्वरूप उनके प्रतिपाद्य विषय के सर्वथा अनुकूल है। भाव-वाची नैतिक मूल्यों के स्वरूप का उद्घाटन तत्सम-प्रधान पांडित्य-पूर्ण संस्कृत-बहुला अनुभूति मयी भाषा में ही सम्भव है। और पूर्ण सिंह की भाषा का सामान्य स्वरूप कुछ ऐसा ही है।

पूर्ण सिंह की शैली की सामान्य और ऊपरी विशेषताएँ

'भावात्मकता', 'प्रवाहमयता', 'उद्धरण-बहुलता', 'नाटकीयता', 'वक्तृत्व-वैशिष्ट्य', 'कथात्मकता', 'चित्रात्मकता' और मूर्तिमत्ता, 'आलंकारिता' और 'कवित्वमयता' तथा 'व्यंग्यात्मकता' पूर्ण सिंह की शैली की सामान्य विशेषतायें हैं। इन विशेषताओं में भावात्मकता और प्रवाहमयता सभी निबन्धों में सर्वत्र पाई जाती हैं। पूर्ण सिंह भावुक व्यक्ति थे। उनकी शैली हृदय से उमड़कर पूरे वेग से प्रवाहित होने वाले मनोभावों को अभिव्यक्ति देने के कारण भावात्मक और प्रवाहमयी हो गयी है। किन्तु यह भावात्मक प्रवाह विचार-शून्य नहीं है। प्रत्येक निबन्ध का एक निश्चित वैचारिक आधार है। वस्तुतः वे विचारों के अनुकूल एक मानसिक वातावरण तैयार करते हैं। पाठक को उस वातावरण में ले आते हैं। उसके बाद प्रतिपाद्य विषय और उसके वैचारिक आधार को स्पष्ट करते हैं। इसीलिए पाठक को इनके निबन्धों में विचार-तत्त्व लक्षित नहीं होता। मानसिक वातावरण तैयार करने के क्रम में ये प्रायः भावात्मक और प्रवाहमयी शैली का प्रयोग करते हैं। इसका एक अच्छा उदाहरण इस प्रकार है—"प्रतिदिन गंगा जल में तो स्नान होता ही है परन्तु जिस पुरुप ने नयनों की प्रेमधारा में कभी स्नान किया है वही जानता है कि इस स्नान से मन के मलिन भाव किस तरह बह जाते हैं, अंतःकरण कैसे पुण्प की तरह खिल जाता है, हृदय-ग्रंथि किस तरह खुल जाती है, कुटिलता और नीचता का पर्वत कैसे चूर-चूर हो जाता है।"[1] यहाँ ध्यान दें तो जैसे नदी के प्रवाह में लहरें उठती हैं वैसे ही नयनों की प्रेमधारा में मलिन भावों के बहने, अन्तःकरण के खिलने, हृदय-ग्रंथि के खुलने और नीचता के पर्वत के चूर-चूर होने की क्रियाएँ एक के बाद एक लहरों के उठने की प्रतीत कराती हैं।

---

1. *सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबन्ध*, पृ. 67, (कन्यादान)

उद्धरण-बहुलता का एक अच्छा उदाहरण 'पवित्रता' निबन्ध में त्याग के प्रसंग में देखा जा सकता है। यहाँ पूर्ण सिंह ने महात्मा बुद्ध, ईसा, शंकर, रामकृष्ण परमहंस, दयानन्द, रामतीर्थ, भर्तृहरि, गोपीचन्द और पूरन भक्त को एक साथ उदाहृत किया है। नामों के अतिरिक्त पूर्ण सिंह उर्दू के शेर और अंग्रेज़ी की पंक्तियाँ भी उद्धृत करते चलते हैं। ऐसा वे अपने कथन को प्रामाणिक और विश्वसनीय बनाने के लिए करते हैं। यह विशेषता उनकी लेखन-पद्धति की एक सामान्य विशेषता है। इसलिए इसके प्रमाण में पंक्तियाँ और परिच्छेद प्रस्तुत करना अनावश्यक है।

नाटकों की एक बहुत बड़ी विशेषता है दृश्य-विधान। दृश्य-विधान के बाद मंच पर पात्रों का अवतरण होता है। 'अमेरिका का मस्त जोगी वाल्ट ह्विटमैन' निबन्ध का आरम्भ ही नाटकीय है। इस निबन्ध में पहले लेखक ने अमेरिका के लम्बे-लम्बे हरे देवदार के घने वन का दृश्य अंकित किया है। उसके बाद घने वन के मंच पर एक लम्बे ऊँचे मिट्टी गारे से लिप्त, मोटे वस्त्र का पतलून-कोट पहने नंगे सिर, नंगे-पाँव और नंगे दिल वृद्ध युवक का अवतरण होता है।

इस नाटकीय प्रयोग से लेखक ने पाठकों की उत्सुकता में वृद्धि की है और दो-ढाई पृष्ठों के बाद उसने रहस्य का उद्‌घाटन करते हुए कहा है—"प्रभात की फेरी वाला जंगल का जोगी, अमेरिका का स्वतंत्र और मस्त फ़कीर वाल्ट ह्विट मैन अपनी काव्य-रचना करता हुआ जा रहा है।"[1] इस प्रकार की नाटकीय शैली पंजाबी भाषा के निबन्ध 'इक जापानी नायिका दी जीवन कथा' में भी प्रयुक्त हुई हैं।

पूर्ण सिंह एक अच्छे वक्ता थे। जब वे बोलने लगते थे तो श्रोता मन्त्र-मुग्ध उनको सुनते रहते थे। उनका यह वक्तृत्व-वैशिष्ट्य उनके निबन्धों में भी देखा जा सकता है। श्रोता यहाँ पाठक बन गये हैं। वे बार-बार अपने पाठकों को सम्बोधित करके अपनी ओर आकृष्ट करते हैं और साथ लेकर आगे बढ़ते हैं। पाठक ! प्यारे ! मित्रो ! प्रिय पाठक ! आपके प्रिय सम्बोधन हैं। इन सम्बोधनों के द्वारा वे कभी उसे विश्वास में लेते हैं, कभी जगाते हैं, कभी उठाते हैं, कभी बैठाते हैं, कभी थोड़ा रुकने के लिए कहते हैं, कभी अंदर के केन्द्र की ओर देखने को कहते हैं और कभी उस पर अपना मन्तव्य प्रकट करते हैं। कभी-कभी सीधे देखो क्रिया-पद का सम्बोधन के रूप में प्रयोग करके वे उसे किसी ख़ास दृश्य

---

1. *सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबन्ध*, पृ. 151 (अमेरिका का मस्त योगी ह्विटमैन)।

की ओर उन्मुख करते हैं। पूर्ण सिंह सदैव अपने पाठकों को प्यार ही नहीं देते, कभी-कभी ख़ास तरह के पाठकों को आदेश भी देते हैं और फटकारते भी हैं। अपात्रों को दान देने वालों को वे सीधे आदेश के स्वर में कहते हैं—"वस ! एकदम बन्द कर दो दान देने को और रुपये जमा कर सकते हो तो करो, किसान की तरह अपना पसीना ज़गीन के अन्दर निचोड़ जो कुछ दाने मिलते हैं उनको खाओ, स्वर्ग और ईश्वर को अपने ताँबे और चाँदी के रुपयों और सोने के डालरों से ख़रीदने इधर-उधर मत भागो।"[1] तात्पर्य यह कि जैसे एक कुशल वक्ता अपने श्रोताओं को सदैव अपने साथ लेकर चलता है वैसे ही पूर्ण सिंह प्रत्येक स्थिति में अपने पाठकों को अपने विश्वास में लेकर आगे बढ़ते हैं।

कथा-तत्त्व का सन्निवेश पूर्ण सिंह के निबन्धों में, पाठकों को मानसिक विराम देता है। पाठक कुछ देर तक कथा-रस में मग्न रहता है किन्तु कथा की समाप्ति के बाद वह पाता है कि लेखक जो कहना चाहता था वह कथा के द्वारा पुष्ट और सिद्ध हो गया है। कथा साधन है, साध्य नहीं। पूर्ण सिंह ने 'सच्ची वीरता' में जापानी संत ओशियो की, 'आचरण की सभ्यता' में शिकारी राजा की, तथा 'मज़दूरी और प्रेम' में गडरिये और गुरु नानक की कहानी कह कर बड़ी सहजता के साथ अपने प्रतिपाद्य विषय की पुष्टि की है। कहानियों में छोटे-छोटे वाक्य कहानी को धीरे-धीरे आगे बढ़ाते हैं और पाठकों की जिज्ञासा उन वाक्यों के साथ मंथर गति से आगे की ओर खिसकती चलती है। यह शैली लोक कहानियों की याद दिलाती है। 'आचरण की सभ्यता' में शिकारी राजा की कहानी इस प्रकार कही गयी है—"एक दफ़े एक राजा जंगल में शिकार खेलते रास्ता भूल गया। उसके साथी पीछे रह गये। घोड़ा उसका मर गया। बंदूक़ हाथ में रह गयी। रात का समय आ पहुँचा। देश वर्फ़ानी, रास्ते पहाड़ी। पानी वरस रहा है। रात अँधेरी है। ओले पड़ रहे हैं। ठंडी हवा उसकी हड्डियों तक को हिला रही है।"[2] वृत्त-कथन की यह शैली अत्यन्त आकर्षक है। लगता है वाक्य-रचना-कौशल के द्वारा लेखक शिकारी राजा की निरवलम्बता और विवशता की ओर धीरे-धीरे अग्रसर कर रहा है। बीच में 'देश वर्फानी' 'रास्ते पहाड़ी' जैसे क्रिया-विहीन वाक्यों का प्रयोग तो हिन्दी में दुर्लभ है।

चित्र-व्यंजना और मूर्ति-विधान पूर्ण सिंह की गद्य-शैली की निजी विशेषतायें हैं। पूरे एक संदर्भ को चित्रित करके उसके द्वारा किसी भावात्मक मूल्य को

1. *सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबन्ध*, पृ0 110-11 (पवित्रता)
2. वही, पृ. 120, (आचरण की सभ्यता)

व्यंजित करना अपने आप में एक विचित्र प्रयोग है। 'पवित्रता' एक भावात्मक नैतिक मूल्य है। इसका स्वरूप व्यंजित करने के लिए पूर्ण सिंह ने छोटे-बड़े सत्ताईस संदर्भ चित्रित किये हैं। इन संदर्भ-चित्रों से जो वातावरण उभरता है, उससे पवित्रता व्यंजित होती है। एक छोटा-सा संदर्भ-चित्र देखिए—"नदी पर एकान्त स्थान में बहुत सी कन्याएँ, स्त्रियाँ, देवियाँ स्नान कर रही हैं। श्री शुकदेव जी पास से गुज़र रहे हैं। उनको कोई भय नहीं हुआ। वे वैसे ही खुल्लम-खुल्ला नंगी नहा रही हैं। नदी का जल मारे आनन्द के कूद रहा है। वे उछल रही हैं।"[1] लेखक यह कहना चाहता है कि शुकदेव जी का मन निर्मल था। इसलिए उसमें विकार उत्पन्न नहीं हुआ और इसी कारण कन्याएँ भी भयभीत नहीं हुईं। अर्थात् पवित्रता मन की वस्तु है, शरीर की नहीं। संदर्भ-चित्रों के अतिरिक्त मूर्त और अमूर्त वस्तुओं और भावों का मूर्ति-विधान करने में भी पूर्ण सिंह अपनी अप्रतिम रचना-शक्ति का परिचय देते हैं। अमूर्त भावों का मूर्ति-विधान अपेक्षाकृत कठिन है। पूर्ण सिंह अमूर्त भावों का मानवीकरण करके उन्हें मूर्त कर देते हैं। सुन्दरता को मूर्त करते हुए वे लिखते हैं—"प्रातःकाल के रूप में सिर पर नरम-नरम और सफ़ेद रूई का टोकरा उठाये हुए किस अन्दाज़ से वह आ रही है।" कहना न होगा कि प्रातःकालीन प्रकृति की सुन्दरता को लेखक ने नारी के रूप में कल्पित और मूर्त किया है। यह मूर्ति-विधान बड़ा ही स्वाभाविक और भव्य है। यदि यहाँ प्रातःकाल के स्थान पर लेखक ने 'उषा वेला' का प्रयोग किया होता तो लिंग-गत-अनौचित्य का परिहार हो जाता।

पूर्ण सिंह के निबन्ध अपनी लाक्षणिकता, आलंकारिकता और कवित्वमयता के लिए विख्यात हैं। ये तीनों विशेषताएँ परस्पर संश्लिष्ट होती हैं। अलंकारों में सादृश्य-सम्बन्ध का विधान गौणी लक्षणा के आधार पर किया जाता है। अलंकार भावों को उत्कर्ष प्रदान करते हैं। भाव-व्यंजना कविता का आधार-तत्त्व है। इस प्रकार जहाँ कविता है, वहाँ अलंकार है और जहाँ अलंकार है, वहाँ लाक्षणिकता है। इसलिए प्रायः सभी कवित्व-पूर्ण स्थलों पर उपर्युक्त तीनों ही विशेषताएँ एक साथ पाई जाती हैं। यों तो पूर्ण सिंह मूलतः कवि हैं इसलिए उनका पूरा गद्य-साहित्य ही काव्य-गुणों से युक्त है, किन्तु जहाँ कहीं ये प्रतिपाद्य विषयों के स्वरूप की प्रतीति काल्पनिक सन्दर्भ-चित्रों द्वारा कराना चाहते हैं या अमूर्त भावों को, मूर्त अप्रस्तुत विधानों द्वारा स्पष्ट करने की कोशिश करते

---

1. *सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबन्ध* पृ. 98 (पवित्रता)

हैं, वहाँ पूरी गद्य-रचना कवित्वमय हो जाती है।

एक उदाहरण देखें—"बर्फ़ का दुपट्टा बाँधे हुए हिमालय इस समय तो अति सुन्दर, अति ऊँचा और अति गौरवान्वित मालूम होता है; परन्तु प्रकृति ने अगणित शताब्दियों के परिश्रम से रेत का एक-एक परमाणु समुद्र के जल में डुबो-डुबो कर और उनको अपने विचित्र हथौड़े से सुडौल करके इस हिमालय के दर्शन कराये हैं। आचरण भी हिमालय की तरह एक ऊँचे कलश वाला मंदिर है।"[1] यहाँ आचरण 'उपमेय है' और हिमालय 'उपमान'। हिमालय मूर्त है। उसके गुणों की प्रतीत की जा सकती है। वह सुन्दर है, ऊँचा है, गौरवशाली है, हमारे मन में उसके प्रति पूज्य भाव संस्कार-बद्ध हो चुका है, इसलिए वह ऊँचे कलश वाला मंदिर है अर्थात् वह पवित्रता का उच्च शिखर भी है। प्रकृति की सहस्रों वर्षों की साधना के बाद तब कहीं वह इन गुणों के साथ साकार हो सका है। एक मूर्त वस्तु को सामने रखकर उसके गुणों की प्रत्यक्ष प्रतीति कराने के बाद पूर्ण सिंह कहते हैं—"आचरण भी हिमालय की तरह एक ऊँचे कलश वाला मंदिर है।" इस प्रकार वे आचरण के सौन्दर्य, उसकी पवित्रता, उसकी ऊँचाई और उसकी गौरव-गरिमा का बोध कराते हैं। उपर्युक्त कथन आलंकारिक ही नहीं उदात्त भी है। इसमें लक्षणाशक्ति से भी काम लिया गया है। आचरण से तात्पर्य है—आचारणशील व्यक्ति। यह तात्पर्य लक्षणा से ही ग्रहण किया जा सकता है। पूर्ण सिंह ने आरम्भ में 'उपमान' हिमालय को ही सामने रखा है और यह भी स्पष्ट कर दिया है कि इसकी निर्मिति में प्रकृति को सहस्रों वर्षों तक प्रयोग करने पड़े हैं। इससे वे व्यंजित कर चुके हैं कि उपमेय 'आचरण' भी मानवता की सहस्रों वर्षों की साधना के बाद ही आकार ग्रहण करने की स्थिति में आया है और यह प्रक्रिया अभी पूरी नहीं हुई है। साधारण गद्य-कथन एक अर्थ देकर समाप्त हो जाता है। कवित्व पूर्ण कथन में अर्थ की अनेक छायाएँ संश्लिष्ट रहती हैं। पूर्ण सिंह के निबन्ध ऐसी कवित्व-पूर्ण उक्तियों से भरे हैं।

पूर्ण सिंह एक मूल्यवादी लेखक है। नैतिक मूल्यों का ह्रास देखकर उन्हें ग्लानि भी होती है और क्षोभ भी। जब वे क्षुब्ध होते हैं। तब उनके कथन व्यंग्यात्मक हो जाते हैं। वे समाज के उन तत्त्वों पर व्यंग्य करते हैं, जो ईश्वर की आँख में भी धूल झोंकना चाहते हैं। आजकल के धनी-मानी दान के माध्यम से अपने पापों को छिपाना चाहते हैं। दान त्याग-वृत्ति का द्योतक न होकर पाप

---

1. *सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबन्ध*, पृ. 118 (आचरण की सभ्यता)

को ढँकने का आवरण हो गया है। इस पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं—"जिस तरह रिश्वत दे-देकर धन एकत्रित होता है उसी तरह ईश्वर को भी रिश्वत देकर स्वर्ग लेने की मनशा हो रही है। ऐसे इकट्ठा करके वैसे दे देना, धर्मशाला बनवा देनी, क्षेत्र लगवा देने, ईश्वर की आँखों में नमक डालकर अपने आपको चतुर कहना, भारतवर्ष के आजकल के जीवन के निघण्टु में दान के अर्थ यही मिलते हैं।"[1] इसी प्रकार पूर्ण सिंह ने भारत के राजा महाराजाओं, ऋषियों के नाम की दुहाई देने वाले भ्रष्ट हिन्दुओं तथा ऋषिकेश, केदारनाथ और बद्रीनाथ के मठाधीशों पर भी व्यंग्य किया है।

अपनी प्रवाह-पूर्ण वाग्धारा के बीच पूर्ण सिंह कहीं-कहीं सूक्तियों का प्रयोग भी करते हैं। उनकी कुछ सूक्तियाँ इस प्रकार हैं—

—आचरण की सभ्यतामय भाषा सदा मौन रहती है। (आचरण की सभ्यता)

—आचरण की मौन भाषा ही ईश्वरीय है (आचरण की सभ्यता)

—मनुष्य की पूजा ही सच्ची ईश्वर पूजा है। (मज़दूरी और प्रेम)

—मज़दूरी करना जीवन-यात्रा का आध्यात्मिक नियम है। (सच्ची वीरता)

—वीरता एक प्रकार का इलहाम (Inspiration) है। (सच्ची वीरता)

सूक्तियों का प्रयोग आचार्य शुक्ल के निबन्धों में भी हुआ है। किन्तु शुक्ल जी की सूक्तियों में चिन्तन का घनत्व है जबकि पूर्ण सिंह की सूक्तियाँ अनुभूति-दीप्त हैं। शुक्ल जी बहुत सोच समझकर सूक्ति रचते हैं और उसकी व्याख्या भी करते हैं किन्तु पूर्ण सिंह की सूक्तियाँ भीतर से स्फुरित होकर सहज ही आकार ग्रहण कर लेती हैं।

उपर्युक्त उभरी हुई सामान्य विशेषताओं के अतिरिक्त ग़ौर करने पर पूर्ण सिंह की गद्य-शैली में ऐसी अनेक विशेषताएँ लक्षित होती हैं जो अपनी विशिष्ट भंगिमा और वक्रता से पाठकों को चमत्कृत और आकृष्ट करती हैं। कहीं पर वे अपने किसी पात्र-विशेष का नामोल्लेख न कर उसके गुणों का एक-एक कर उल्लेख करते हुए प्रश्नों की झड़ी लगा कर पाठकों का कुतूहल बढ़ाते हैं।[2] कहीं एक ही क्रिया के अनेक समानधर्मा कर्ताओं का एक साथ उल्लेख न करके वाक्य को तोड़कर प्रत्येक कर्ता के साथ क्रिया-पद का अलग-अलग प्रयोग करके पूरे कथन को प्रभावशाली बना देते हैं।[3] कहीं उपनिषदों की नेति-नेति शैली का प्रयोग

---

1. *सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबन्ध*, पृ. 110 (पवित्रता)
2. अमेरिका के वन में...ब्रह्म ज्ञान रूपी स्वर्ग कौन है। —(अमेरिका का मस्त योगी वाल्ट ह्विटमैन)
3. महात्मा बुद्ध ने त्याग किया...पूरन भक्त ने त्याग किया (पवित्रता)

करके प्रतिपाद्य-तत्त्व के वैशिष्ट्य को रेखांकित करते हैं।[1] कहीं एक ही वस्तु में एक ही साथ विरोधी धर्मों की स्थिति दिखाकर पाठकों को आश्चर्य में डाल देते हैं।[2] कहीं बात कहते-कहते अंत को पूरा किये बिना छोड़ देते हैं और पाठकों को अपनी ओर से पूरा करके समझने की चुनौती देते हैं।[3] कहीं क्रिया विशेषणों में अप्रस्तुत का विधान करके वाक्य में अद्‌भुत चमत्कार और वक्रता का समावेश कर देते हैं।[4] और कहीं वाक्य-रचना में समानान्तरता का विधान करके अपने कथन को अत्यन्त विश्वसनीय बनाने की कोशिश करते हैं। आजकल के शैली वैज्ञानिक समानान्तरता को शैली का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व मानते हैं। पूर्ण सिंह के गद्य में 'समानान्तरता' के सभी रूप लक्षित किये जा सकते हैं। इसके एक दो उदाहरण अप्रासंगिक न होंगे—

'समानान्तरता' एक तरह की पुनरुक्ति है। यह पुनरुक्ति ऐसी होती है जो कथन के मूल्य को बढ़ा देती है। शब्द, पदबंध, उपवाक्य तथा वाक्य इन सभी की पुनरुक्ति द्वारा समानान्तरता का विधान किया जा सकता है। पुनरुक्ति के घटक दो, तीन, चार या इससे भी अधिक हो सकते हैं। पूर्ण सिंह की शैली में सभी प्रकार की समानान्तरताएँ मिलती हैं। कभी वे एक ही शब्द की आवृत्ति द्वारा इसका विधान करते हैं। जैसे—

"उनका चिन्तन बासी, उनका ध्यान बासी, उनकी पुस्तकें बासी, उनके लेख बासी, उनका विश्वास बासी और उनका ख़ुदा भी बासी हो गया है।"

—(मज़दूरी और प्रेम)

कभी वे समान वाक्यों की आवृत्ति से समानान्तरता का वैशिष्ट्य उत्पन्न करते हैं। जैसे—

"हवा चल रही है, जल बह रहा है, बादल बरस रहा है, पक्षी नहा रहे हैं, फूल खिल रहा है, घास नई, पेड़ नये, पत्ते नये, मनुष्य की बुद्धि और फ़कीरी ही बासी।" —(मज़दूरी और प्रेम)

ऊपर के उदाहरण में पहले के पाँच समान वाक्यों में चार-चार शब्द हैं। बाद के तीन वाक्यों में दो दो शब्द। इस प्रकार पूरे गद्य-विधान में अद्‌भुत लय उत्पन्न कर दी गयी है।

---

1. न काला न नीला...हुआ करती है। (आचरण की सभ्यता),
2. राजा में फ़कीर...डूबा हुआ है ! (आचरण की सभ्यता)
3. मंसूर का सूली पर...मंसूर मारा गया। (सच्ची वीरता)
4. वे तो देवदारु...पैदा होते हैं। (सच्ची वीरता)

'पवित्रता' शीर्षक निवन्ध का अन्त करते हुए उन्होंने एक ही तरह के भाषिक घटकों की आवृत्ति से समानान्तरता का जो विधान किया है उससे प्रतिपाद्य के प्रति उनकी गहरी निष्ठा का अनुमान लगाया जा सकता है। देखिए–

"इस वास्ते बनो साधारण मनुष्य, जीते जागते मनुष्य, हँसते-खेलते मनुष्य, नहाये-धोये मनुष्य, प्राकृतिक मनुष्य, जान वाले मुनष्य, पवित्र हृदय पवित्र बुद्धि वाले मनुष्य, प्रेम भरे, रस भरे, दिल भरे, जान भरे, प्राण भरे मनुष्य।"–(पवित्रता)

पूर्ण सिंह सारे आडम्बरों और व्यावसायिक सभ्यता के आवरणों के भीतर से सहज मनुष्य को अलग करके देखना चाहते थे। उसे ही दिल से प्यार करते थे। मज़दूरों, किसानों, गड़ेरियों और मस्त-मौला सन्तों में उसकी छाया देखते थे। इसीलिए वे सहज जीवन्त मनुष्यता का बोध कराने वाले विशेषणों के साथ जोड़कर बार-बार मुनष्य शब्द की आवृत्ति करते हैं। वास्तविकता यह है कि भाषा और शैली की कोई भी विशेषता स्वयं में साध्य नहीं है। उससे रचनाशील साहित्यकार के व्यक्तित्व का बोध होता है। वह व्यक्तित्व-व्यंजना का साधन मात्र है।

पूर्ण सिंह की गद्य-शैली का बारीकी से विवेचन करने के बाद डॉ. भोलानाथ तिवारी ने लिखा है–"वस्तुतः समानान्तरता, विचलन और अप्रस्तुत-विधान की दृष्टि से पूर्ण सिंह की भाषा गद्य-भाषा की तुलना में कविता की भाषा के कहीं अधिक निकट है। उसमें कविता की भाषा की तरह ही भावुक सर्जनात्मकता का अतिरेक है।"[1] कहना न होगा कि यह भावुक सर्जनात्मकता द्विवेदी-कालीन नैतिक सामाजिक सुधारों से जुड़ी तथ्यपरक वस्तु-संग्रहकारिणी गद्य-शैली से सर्वथा अलग है। पूर्ण सिंह के भाषा-शैली सम्बन्धी सारे प्रयोग हिन्दी-निबन्ध-साहित्य को एक नयी स्वच्छन्द भाव-भूमि प्रदान करते हैं। इस भाव-भूमि में धरती की गंध भी है और आकाश की निर्मलता एवं व्याप्ति भी।

महत्त्व

हिन्दी साहित्य में निबन्धकार के रूप में पूर्ण सिंह का महत्त्व आत्मव्यंजक निबन्धों के पुरस्कर्ता के रूप में नहीं उसे भाषा और भाव की नयी विभूति प्रदान करने

---

1. *अध्यापक पूर्ण सिंह*, स. डॉ. नगेन्द्र पृ. 57

के कारण है किन्तु पंजाबी साहित्य में वे विशुद्ध साहित्यिक निबन्ध के प्रथम लेखक माने जाते हैं। सन् 1954 में नागरी प्रचारिणी सभा की हीरक जयंती के अवसर पर पंजाबी साहित्य के पिछले साठ वर्षों का सिंहावलोकन करते हुए श्री कर्तार सिंह तथा श्री बलराज साहनी ने अध्यापक पूर्ण सिंह के गद्य-साहित्य के सम्बन्ध में लिखा था—"पूर्ण सिंह उतने सैद्धान्तिक नहीं हैं जितने काव्यात्मक हैं, सिद्धान्त के उतने विचारक नहीं हैं, जितने आलंकारिक है। मुक्त लेखों में आपकी गद्य-रचना का नमूना उच्च कोटि का है। आपके गद्य का प्रधान विषय प्यार है। आपका विचार है कि प्यार के बिना न कविता उत्पन्न होती है, न धर्म, न मित्रता, न कीर्ति, न हुनर।"[1] अपनी टिप्पणी का अन्त करते हुए लेखकद्वय कहते है—"पूर्ण सिंह पंजाबी में विशुद्ध साहित्यिक निबन्ध के प्रथम लेखक हैं। वे किसी ख़ास सिद्धान्त को समझाने के लिए रचना नहीं करते। वे केवल अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों व भावनाओं को प्रकट करने के लिए ही लिखते हैं।"[2] कुछ भी हो हिन्दी में कम-से-कम लिखकर अधिक-से-अधिक ख्याति अर्जित करने वाले रचनाकारों में अध्यापक पूर्ण सिंह अविस्मरणीय हैं। कितना अच्छा होता यदि इन्होंने हिन्दी-साहित्य की अन्य विधाओं को समृद्ध करने में भी अमूल्य योगदान दिया होता।

---

1. *हीरक जयंती* ग्रंथ, काशी ना. प्र. स., पृ. 565
2. वही.

6

कवि पूर्ण सिंह

अध्यापक पूर्ण सिंह उस परम्परा के कवि हैं जिसे उपनिषदों की भाषा में कविमनीषी कहा गया है। उनकी कविता संत कवियों की सहज वाणी में व्यक्त दिव्य-चेतना का साक्षात्कार कराती है। आधुनिक नवजागरण के आलोक-पुरुष स्वामी विवेकानन्द ने जिस विज्ञान-सम्मत नव आध्यात्मिक चेतना को राष्ट्रीय नवजागरण का आधार बताया था उससे पूर्ण सिंह पूरी तरह प्रभावित थे। अमेरिका के साधक कवि वाल्ट ह्विटमैन से प्रेरणा और सिख गुरुओं की रहस्यवादी अन्तर्दृष्टि से प्रभाव ग्रहण कर उन्होंने अपनी कविता को एक नवीन स्वरूप प्रदान किया। उनकी कविता की यह नवीनता या विलक्षणता इस बात में है कि उसमें मानव, प्रकृति और देवता तीनों एक ही दिव्य सत्ता के अंग बन गये हैं। पूर्ण सिंह की कविता में प्रभात का आकाश है, चरते हुए पशु हैं, पंजाब की नदियाँ हैं, जंगली फूल हैं, रात का दीया है, बाज़ार की रौनक है, झुंड की झुंड लड़कियाँ हैं, उपले पाथती हुई पंजाब की अहीरिन हैं, हलवाहे हैं, पंजाब के मज़दूर हैं, कुम्हार और कुम्हारिन हैं, जंगली छोहर हैं, घर की घरनी है, पूरन जोगी हैं, सोहनी-महिवाल हैं, हीर-राँझा हैं, बुद्ध हैं, हनुमान हैं और वह सब कुछ है जो भारत की आत्मा को, उसके नैसर्गिक सौन्दर्य को, उनकी सांस्कृतिक एकता को, तथा उसके अतीत और वर्तमान को संश्लिष्टता में साकार करता है। भारतीय मनीषा ने प्रकृति के विराट् सौन्दर्य में दिव्य चेतन सत्ता का आभास पाया था। उसने व्यक्त प्रकृति के कण-कण में अव्यक्त सत्ता के अस्तित्व को पहचाना था। उसने मनुष्य में ईश्वर के दर्शन किये थे और ईश्वर को मनुष्य के रूप में अवतरित किया था। यह संसार नश्वर है किन्तु यह नश्वरता, अविनश्वरता का साक्षात्कार कराती है।

इसीलिए भारतीय मनीषा ने सीमित और नश्वर में भी असीमित और अविनश्वर की पहचान की थी। पूर्ण सिंह ने सन्त कवियों द्वारा प्रतिपादित इस अस्तित्व-चेतना की परम्परा को आधुनिक युग के अनुकूल नये रूप में प्रतिष्ठित किया है। उनके अनुसार जहाँ कहीं प्रेम है, सौन्दर्य है, सात्विकता है, जीवन है, उल्लास है, सहज राग-चेतना का उच्छलन है, वहाँ ईश्वरीय सत्ता का अस्तित्व विद्यमान है। यहाँ यह स्मरणीय है कि पूर्ण सिंह एक वैज्ञानिक भी थे। एक वैज्ञानिक का प्रत्यक्ष में परोक्ष सत्ता का स्वीकार कुछ अविश्वसनीय लगता है, किन्तु भूलना न होगा कि विज्ञान अभी भी कारण-कार्य-परम्परा के रहस्य का पूरी तरह उद्घाटन नहीं कर सका है। पूर्ण सिंह के गुरु स्वामी रामतीर्थ भी वैज्ञानिक थे। स्वामी विवेकानन्द और विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी विज्ञान की उपलब्धियों से अपरिचित नहीं थे। अमेरिका और यूरोप के जिन कवियों–वाल्ट ह्विटमैन, विलियम ब्लेक, कार्लाइल आदि–को उन्होंने विशेष महत्त्व दिया है, वे भी विज्ञान-युग की ही विभूति हैं। वास्तविकता यह है कि उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध और बीसवीं सती के प्रथम चरण में यदि एक ओर विज्ञान के आलोक ने कवियों के मानसिक क्षितिज का विस्तार करके जीवन और जगत् के प्रति उनकी जिज्ञासा को बढ़ा दिया तो दूसरी ओर सृष्टि के विकास-क्रम की निगूढ़ता और जटिलता का उद्घोष करके उनकी अध्यात्म-चेतना का एक सीमा तक पोषण भी किया था। इसीलिए भारतीय नवजागरण के सभी आलोक-पुरुष आध्यात्मिक हैं। उनकी कल्पना में रहस्यमयता का सहज स्वीकार है। पूर्ण सिंह तो उस कविता को कविता ही नहीं मानते जिसमें ईश्वरीय सत्ता की दिव्यता का आभास न हो। उन्होंने जिस 'डिसाइप्ल पोयट्री' की अवधारणा को महत्त्व दिया है, वह इस प्रकार की अध्यात्म-चेतना से अनुप्रमाणित रहस्यानुभूति की ही कविता है।

पूर्ण सिंह की काव्य-कृतियों का अवलोकन करने से स्पष्ट हो जाता है कि उनकी बहुसंख्यक कविताएँ करतार या रब्ब की अलौकिकता का उद्घाटन तथा गुरुओं, साधकों, भक्तों और योगियों की दिव्य आध्यात्मिक चेतना का प्रतिपादन करने वाली हैं। उन्होंने कृष्ण, गोरख, हनुमान, बुद्ध, नानक आदि के दिव्य व्यक्तित्व तथा भक्ति, ध्यान, योग, ईश्वरोन्मुख प्रेम आदि के महत्त्व का बड़ी तत्परता और तन्मयता से वर्णन किया है। उनकी अनेक कविताओं में ईश्वर की रहस्यात्मक अनुभूति का वैसा ही आभास मिलता है जैसा कबीर और नानक की कविताओं में। उनके *खुल्हे-घुंड* संग्रह की 'पारस मैं', 'प्यार दा सदा लुकिआ भेत', 'दिविआ लखाँ दी ज़गमग', 'ध्यान दी धुन्द जेहीं', 'पिआरी सिख मैं होई करतार

दी', 'सुरत ते हंकार', 'गुरु अवतार सुरति' आदि कविताएँ आध्यात्मिक एवं रहस्यात्मक अनुभूति की दिव्य चेतना से भावित हैं। पूर्ण सिंह का कवि भाषा का बन्धन स्वीकार नहीं करता। जिस सहजता से उन्होंने पंजावी में अपनी अनुभूति को काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है, उसी सहजता से उन्होंने अंग्रेज़ी में भी अपनी काव्य-प्रतिभा का चमत्कार दिखाया है। पूर्ण सिंह का मुख्य कृतित्व अंग्रेज़ी में ही है। उनके नौ अंग्रेज़ी कविता-संग्रहों का अध्ययन करने के बाद कर्तारसिंह दुग्गल ने लिखा है—''पूर्ण सिंह सौन्दर्यानुरागी रहस्यवादी थे। काव्य की स्रोत धारा का उन्होंने छककर पान किया था। उन्होंने उन लोक-गीतों में रस पाया था, जो 'ट्रीजिन' में 'सिस्टर्स ऑफ़ द स्पिनिंग व्हील' (चरखा कातती बहनों) ने गाये थे। उन्होंने यदि हीर के रोमानी आमोद-प्रमोदों में आनन्द का अनुभव किया तो भौतिक बन्धनों के प्रति पूरन भगत के पुनीत परित्याग की गहन अनुभूति भी की। उन्होंने *गीत-गोविन्द* के प्रणेता जयदेव, उमर और हाफ़िज, शाह हुसेन और बुल्लेशाह—सभी का जयगान किया और सिख गुरुओं द्वारा उच्चरित प्रत्येक शब्द तो मानो उन्हें मंत्र-मुग्ध ही कर देता था। पूरन भगत की कथा का अमृत उन्होंने अपनी अनुपम काव्य-गागर में उड़ेला और गुरु बानी को अंग्रेज़ी में रूपान्तरित करने में तो मानो उन्होंने अपनी सम्पूर्ण साहित्यिक प्रतिभा को समर्पित कर दिया।''[1] वस्तुतः पूर्ण सिंह के काव्यानुभव को खण्ड-खण्ड करके देखना उचित नहीं है। उनके पूरे रचना-संसार का अनुभूति-केन्द्र एक ही है। प्रकृति की बिखरी हुई विभूतियों का सौन्दर्याङ्कन हो या मानव-जीवन के सहज रमणीय सन्दर्भों का चित्रण, अलौकिक एवं दिव्य-पुरुषों के महिमामय व्यक्तित्व का उद्घाटन हो या साधकों एवं भक्तों की उदात्त अनुभूतियों का साक्षात्कार, पूरन योगी और भर्तृहरि की वैराग्य वृत्ति के प्रति एकान्त समर्पण का भाव हो या सोहनी-महिवाल एवं हीर-राँझा की अलौकिक त्यागपूर्ण मर्मभेदी दुखान्त प्रणय-कथा का अनुभावन, पूर्ण सिंह ने सर्वत्र ईश्वरीय ज्योति के दिव्य आलोक का दर्शन किया है।

पूर्ण सिंह की कुछ कविताओं को सामने रखकर हम उनकी उपर्युक्त विशेषता को स्पष्ट करना चाहेंगे। सबसे पहले प्रकृति के एक-दो चित्र देखिए। उनकी एक पंजाबी कविता है—'प्रभात आकाश विच।' यह कविता खुल्हे मैदान भाग, दो में संगृहीत है। इसके हिन्दी-रूपान्तर का एक अंश देखिए—

---

1. *अध्यापक पूर्ण सिंह*, सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 28

उठाकर तारों की नीली-नीली टोकरी
वह आ रही है—भोर !
फूल बिखरते हैं, सुंदरी हंस गति चलती
एक पाँव अँधेरे से उठाकर प्रकाश में रखती
दूसरा रखती अँधेरे में
वह प्रभा-ज्योति सुन्दरी चली आ रही है।

अपने दुपट्टे से ढक लिया सोने का सूर्य
उन बर्फ़ों से वह दबे पाँव उतरती
सोना बिखेरती, उँडेलती बेहद
प्रकाश के सागरों को पाँव से ठेलती
वह आयी, वह गयी
यह अमृत की पुतली।

उपर्युक्त चित्र पर ध्यान दीजिए। इसकी विशेपता मात्र इतनी ही नहीं है कि भोर-सुन्दरी की रूप-कल्पना प्रकृति के जिन उपादानों से की गयी है, वे अत्यन्त स्वाभाविक हैं और प्रातःकालीन प्राकृतिक परिवेश से बड़ी कुशलता से चुने गये हैं, इसकी विशेषता यह भी है कि प्रभा-ज्योति सुन्दरी के आने-जाने के क्रम में एक नैरन्तर्य है जो उसे अमरता प्रदान करता है। इस प्रकार यह पूरा चित्र लोकोत्तर सत्य की ओर संकेत करता है।

पूर्ण सिंह की अंग्रेज़ी कविताओं का एक संग्रह है—द *हिमालयन पाइन्स*। इसमें संगृहीत 'चीड़ों के नन्हें शिशु' शीर्षक एक कविता का हिन्दी-रूपान्तर देखिए—

जब मैं जंगल से गुज़रा
चीड़ों के नन्हें शिशुओं ने अपनी ओस भीगी
पर्वतीय गोदों में वन्य जीवन के
आदिम उल्लासों को भर लिया,
अपने निश्छल हृदयों की तरलता से उन्होंने मेरे पैर धोये,
झुककर उन्होंने मेरी उँगलियों में
नन्हीं सीकों की गुलाबी और नीली अंगूठियाँ पहना दीं
मेरे कानों में उन्होंने घास के कुण्डल लटकाये
और मुस्कान की मालाएँ मेरे गले में डालीं।
मैं निश्चल खड़ा रहा,

वन्य उपहारों से मैंने अपने को अलंकृत होने दिया।
उन्होंने बना दिया मुझे चीड़ का एक वृक्ष
लताएँ मेरी कमर में गुथ गयीं, मेरी बाँहों पर
काई, कीचड़, पत्तियाँ, वनस्पतियाँ
उस पल मैं सुख में उनके और अपने
तन्मय हो उठा।

कहना न होगा कि उपर्युक्त कविता में जड़ और चेतन का भेद मिट गया है, नन्हें चीड़-वृक्षों के नैसर्गिक सौन्दर्य में तन्मय कवि उनसे एकाकार हो गया है। दोनों एक ही भाव-जगत् के अंग वनकर इस सत्य का साक्षात्कार करा रहे हैं कि जड़ और चेतन का भेद व्यर्थ है। एक ही परम-तत्त्व दोनों में विलसित हो रहा है।

पूर्ण सिंह को प्रकृति जितनी प्यारी है, मानव-जीवन के नैत्यिक सहज व्यापार भी उतने ही प्यारे हैं। उनके *खुल्हे मैदान* पंजाबी कविता–संग्रह के चौथे भाग में संगृहीत कविता–'कुड़ीयां दां सी त्रिझन दां त्रिझन' का एक अंश उसके मूल पंजाबी रूप में दिखिए–

कुड़िआं दां त्रिझन सी, जांदा गांदा,
मैं पता नहीं क्यों, टुरपिआ नाल-नाल पिछे-पिछे,
उन्हा दे गले दीआं नाड़ां नीलीआं उठदीआं,
उन्हां दीआं चिटीआं चिटीआं, लमीआं लमीआं,
हंस-गरदना, सुर नाल हिल दीआं।
कोई-कोई पिछे मुड़ देखदी,
ए कोण है जो पिछे लगा आऊँदा।
ते कोई-कोई देख मैनू हंस दी,
क्या जवान जेहा बेवकूफ है
असां सारीआं कोलो सोहणां एह,
केहा पिछे-पिछे खिंची आंदा।

झुंड की झुंड गाती हुई लड़कियों के सहज उल्लसित सौन्दर्य से आकृष्ट होकर युवा कवि उनके पीछे-पीछे चल देता है। वह नहीं जानता कि ऐसा क्यों कर रहा है ? कुछ लड़कियाँ उसे देखकर हँस देती हैं। उन्हें उसका यह कार्य वेवकूफ़ी भरा लगता है किन्तु वे अनुभव करती हैं कि वह उनमें सभी से सुन्दर

है। जीवन का यह छोटा-सा चित्र अत्यन्त स्वाभाविक है। सौन्दर्य के प्रति अहेतुक आकर्षण ही सृष्टि का वह रहस्य है, जो कण-कण में ईश्वरीय अस्तित्व का बोध कराता है। कवि ने इसी आकर्षण की ओर संकेत करके पूरे चित्र को लोकोत्तर भव्यता से मंडित कर दिया है। यहाँ एक भी व्यापार, एक भी चेष्टा या अनुभव कृत्रिम नहीं है। कहा जा सकता है कि यह चित्र अपने 'होने' के कारण ही सुन्दर है, दिव्य है, लोकोत्तर है।

पूर्ण सिंह को गृह-व्यापार के केन्द्र में रहने वाली घर की घरनी भी कई हाथों और कई बाँहों वाली अभूतपूर्व देवी प्रतीत होती है। अपनी पंजाबी कविता 'घर की गहल चंगी' में उन्होंने घर की घरनी के तीन चित्र अंकित किये हैं। अंतिम दो चित्रों के हिन्दी रूपान्तर देखिए—

प्रातःकाल, पक्षियों के कीर्तन की ध्वनि सुनकर
सुंदर, जवान, मेहंदी-रचे हाथ-पाँव वाली
हाथी-दाँत चूड़े वाली प्यारी मेरी जागती
लाल ओढ़नी वाली दूध दुहने जाती
दूध देती नीली गऊ,
आटा जब छानती
और उच्चारती लय में सुखमनी साहिब—पूरी-की-पूरी
छलनी में से
किरनों की वर्षा-सी धाराएँ बहतीं
आटा निकल कर गिरता
मेरा जी जुड़ाता,
एक प्रकाश-सा घर में।

एक तो भोर पूर्व से आती ज़ोर-शोर से
एक वह देवी आती प्रातःकाल
आटे की टोकरी चूड़े वाले एक हाथ पर धरे
माखन की टिकिया काले कटोरे में दूसरे हाथ पर
दूध का कटोरा एक अन्य हाथ पर
छाछ की मटकी सिर पर रखे
वह कई हाथों, कई बाँहों वाली देवी अभूतपूर्व
प्रतिदिन नयी जैसी आती—

मेरे आँगन में यों प्रवेश करती मेरी घरनी
देवी किसी आकाश की, मैं उसे घरनी-घरनी कहता हूँ
यह तो एक प्रभात-रश्मि फूटती मेरी छत के नीचे
आग मेरे चूल्हे में सुलगती
पूर्वोदय की लालिमा से अधिक लाल।

कवि पूर्ण सिंह के लिए आध्यात्मिक चेतना, उदात्त मानवीय चेतना से पृथक् कोई तत्त्व नहीं है। वे हल जोतते हुए किसान, भेड़ चराते हुए गड़रिये, उपले पाथती हुई अहीरिन और मज़दूरी करते हुए श्रमिक की कार्यनिष्ठा को भी आध्यात्मिक मानते हैं। इसीलिए गृहस्थ जीवन में प्रतिदिन के कार्य-कलापों को पूरी तन्मयता और निष्ठा से सम्पादित करने वाली घर की घरनी भी उन्हें देवी प्रतीत होती है। यहाँ यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि पूर्ण सिंह पातिव्रत धर्म और सतीत्व के कारण 'घर की घरनी' को देवी रूप में देखते हैं, यदि ऐसा होता तो 'जांगली छोहर' के हुस्न की शान में वे सत्य का पुष्प-मुखड़ा न देखते। उनकी 'जांगली छोहर' कविता का हिन्दी रूपान्तर देखिए–

जांगलियों की छोहर
कन्या देखती मुझे
हँसती देखती मुड़-मुड़कर
हवा की तरह आज़ाद आती वह।
खेतों के बीचोबीच घास पर क़दम रखती
और अपने काले नयनों के जादू से
दिल हिला जाती सारे जगत का।
मरी मिट्टी उसके सुबक नरम क़दमों को चूमकर।
जंगली फूलों को ख़बर रहती उसके काले केशों की ख़ुशबू की
नीले और लाल रंग के वस्त्र
परिचित लगते हैं उसके आत्मा के सहज सौन्दर्य के अहंकार के
कैसे दोपहर की हवा में
तंद्रिल प्रसन्नता में
उड़ते उसके कपड़े, परिहास करते,
उछलते, हँसते, अहंकार भरे कपड़े,
इस मिट्टी, रेत, खाद में कैसा कमाल!

है इस काफ़िर इस बुत के
हुस्न की शान का
जैसे स्वप्न में हो खिला
असत्य जैसा सत्य का
पुष्प-मुखड़ा।

यहाँ अनुभूति की दिव्यता के साथ ही अभिव्यक्ति की भंगिमा भी ध्यान देने योग्य है। 'जांगली छोहर' के हुस्न की शान ऐसी है कि लगता है कि यथार्थ न होकर स्वप्न हो। स्वप्न असत्य होता है, इसलिए वह मुखड़ा असत्य जैसा है। किन्तु वह सौन्दर्य नित्य और दिव्य है, इसलिए असत्य जैसा वह पुष्प-मुखड़ा वस्तुतः सत्य का ही है।

पूर्ण सिंह के काव्य की परिधि में एक बहुत बड़ा भाग पंजाब में प्रचलित मिथकीय कथाओं और रूमानी आख्यानों का है। मिथकीय कथाओं में पूरन योगी की कथा पंजाब में सर्वाधिक लोकप्रिय है। पूर्ण सिंह ने इस कथा को विस्तृत रूप में पूरी तन्मयता के साथ प्रस्तुत किया है। *खुल्हे मैदान* पंजाबी कविता संग्रह के पहले भाग में 52 छोटे-छोटे संदर्भों में यह कथा वर्णित है। कथा इस प्रकार है—

—पूरन के पिता का नाम सालवाहन (शालि वाहन) था। राजा सालवाहन उज्जयिनी के सुप्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य की वंश-परम्परा में थे। सालवाहन के पूर्वजों ने सियालकोट के थाने पर अधिकार कर लिया था। राजा सालवाहन सियालकोट पर शासन करते थे। जब पूरन का जन्म हुआ तब ज्योतिषियों ने बताया कि बारह वर्ष तक बालक को एकान्त में रखना होगा क्योंकि ग्रह ऐसे हैं कि यदि बारह वर्ष के पहले राजा ने नवजात शिशु का मुख देख लिया तो अमंगल होगा। बालक पूरन को बारह वर्ष तक एकान्त में रखा गया। इस बीच राजा ने लूणा नामक एक चमार कन्या से ब्याह कर लिया। बारह वर्ष बाद पूरन अपने पिता से मिले। उन्होंने सहज भाव से अपनी विमाता लूणा को 'माँ' कहकर सम्बोधित किया। रूप-गर्विता नवयुवती रानी लूणा को यह सम्बोधन खल गया। उसने युवक पूरन से अनैतिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहा। पूरन के लिए लूणा मातृमूर्ति थी। उन्होंने उसका अप प्रस्ताव अस्वीकर कर दिया। लूणा ने प्रतिशोध लेना चाहा। उसने राजा से पूरन की शिकायत की। राजा ने पूरन को मुल्ज़िम माना। पूरन को मार कर कुएँ में फेंकने की आज्ञा दी गयी। पूरन की माता रानी इछराँ ने कचहरी में राजा से गुहार की। उसका कोई फल नहीं निकला।

पूरन के हाथ-पैर काटकर कुएँ में फेंक दिया गया। योगी गोरखनाथ अपने अनुयायी योगियों के साथ उसी कुएँ के पास से निकले। उनकी कृपा से पूरन के हाथ-पैर ठीक हो गये। पूरन ने गुरु गोरखनाथ से दीक्षा ले ली। गोरखनाथ के साथ पूरन योगी सुंदरां रानी के देश में गये। वहाँ वे सुंदरां रानी के महल में भिक्षा लेने गये। सुंदरां रानी उनका दर्शन करने आयी। उसने वर माँगा गोरखनाथ प्रसन्न हुए। रानी पूरन को अपने महल में ले गयी। सुंदरा रानी को तुष्ट करके पूरन गोरखनाथ के पास लौट आये। इसके बाद एक सिद्ध योगी के रूप में पूरन ने सियालकोट में प्रवेश किया। वहाँ जब राजा को सारा वृत्तान्त सही-सही ज्ञात हुआ तब उन्होंने रानी लूणा को दण्ड देना चाहा। पूरन योगी ने मना कर दिया। पूरन अपनी माँ इछरा के पास गये। रानी रो-रोकर अंधी हो गयी थी। पूरन योगी ने माँ की आँखें ठीक कर दीं। राजा ने उन्हें सिंहासन देना चाहा। पूरन ने स्वीकार नहीं किया। पूरन योगी के वरदान से राजा को पुत्र की प्राप्ति हुई। अंततः पूरन अपने गुरु के पास लौट आये और सिद्ध योगी के रूप में विख्यात हुए। पूर्ण सिंह ने पूरन के अपनी माता इछरा से मिलने तक की कथा विस्तार से लिखी है। पूर्ण सिंह के लिए इस कथा का विशेष महत्त्व है। इस कथा के माध्यम से वे न केवल पंजाब के लोक-मानस का साक्षात्कार करते हैं, वरन् भौतिक बन्धनों के प्रति सात्विक त्याग एवं अनासक्ति की आध्यात्मिक चेतना का अनुभावन भी करते हैं। इसी स्तर के त्याग और विरक्ति की भावना उन्हें सिख गुरुओं की पवित्र वाणी में प्राप्त हुई थी। इसी भावना से उनका रचना-संसार किसी-न-किसी रूप में ओत-प्रोत है।

रूमानी आख्यानों में 'हीर और राँझा', तथा 'सोहनी और महिवाल' की कथाएँ पंजाब में बहुत लोक-प्रिय हैं। दोनों ही दुखान्त प्रेम-कथाएँ हैं। 'हीर' और 'राँझा' दोनों एक दूसरे को प्यार करते थे। हीर के पिता ने उसका ब्याह खेड़ा जाति के युवक सैदा से कर दिया। ब्याह हो जाने के बाद भी हीर अपने सत पर अडिग रही। राँझा योगी होकर हीर की ससुराल पहुँचा। हीर ने एक दिन अभिनय किया कि उसे साँप ने डँस लिया है। विष उतारने के लिए योगी राँझा को बुलाया गया। अवसर पाकर राँझा, हीर को लेकर भाग निकला। खेड़ाओं ने उसे पकड़ लिया। मामला राजा के यहाँ पहुँचा। राजा ने हीर को सैदा के हवाले कर दिया। यह फ़ैसला होते ही नगर में आग लग गयी। राजा ने तुरन्त फ़ैसला बदला और हीर का हाथ राँझा को सौंप दिया। राँझा हीर को लेकर उसके पिता के पास गया। हीर के पिता ने कपट से काम लिया। उसने कहा कि राँझा बारात

लेकर आये तो वह हीर की शादी उससे कर देगा। राँझा बारात लेने गया। इधर हीर के पिता ने उसे ज़हर दे दिया। यह समाचार जब राँझा को मिला तो उसने भी अपने प्राण त्याग दिये।

'सोहनी और महिवाल' की कथा भी दुखान्त है। सोहनी कुम्हार जाति की कन्या थी। उसके रूप-गुण पर रीझ कर राजकुमार महिवाल चिनाब के दूसरे किनारे पर धूनी रमाकर बैठ गया। सोहनी प्रतिदिन एक घड़े की सहायता से चिनाब पार करके उससे मिलने जाती थी। एक दिन उसकी भाभी ने उसे चिनाब पार करते देख लिया। उसने चुपके से सोहनी के पक्के घड़े के स्थान पर कच्चा घड़ा रख दिया। प्रेम-भावना में डूबी हुई सोहनी कच्चे घड़े के सहारे ही चिनाब पा करने लगी। घड़ा बीच नदी में फूट गया। सोहनी चिनाब में डूब कर मर गयी। इसी तरह की एक कथा 'ससी' और 'पुन्नू' की है। पूर्ण सिंह ने इन कथाओं को काव्य-विषय बनाया है। पूर्ण सिंह के पहले इन कहानियों का महत्त्व इनकी रूमानियत के कारण मान्य था। पूर्ण सिंह ने इन दुखान्त प्रेम-कथाओं को आध्यात्मिक गरिमा से मंडित कर दिया है। हरभजन सिंह ने इस विशेषता को लक्षित करते हुए कहा है—"पंजाबी का क़िस्सा-काव्य मनुष्य की रोमानी प्रवृत्ति की ओर उन्मुख था, जबकि पूर्ण सिंह का काव्य उसकी आध्यात्मिक चेतना को उजागर करता है। रोमानी क़िस्सों की मिथकीय व्याख्या पूर्ण सिंह का पंजाबी संस्कृति को विशिष्ट योगदान है।"[1] अपने कथन की पुष्टि में हरभजन सिंह ने *खुल्हे मैदान* भाग दो में संगृहीत 'सोहणी दी झुग्गी' कविता उद्धृत की है। इस कविता का हिन्दी-रूपान्तर देखिए—

मुझे नज़र आती है चिनाब के उस किनारे
दूर नूर में डूबी हुई, छोटी-सी झोंपड़ी
केवल उतना-सा स्थान चमकता है
शेष चिनाब का पानी और तटवर्ती प्रदेश घोर अंधकार
अंधकार में चमकती है वही तारिका-सी
यह सोहणी का दिल है
इसमें बसा है शाश्वत जीवन
पंजाब का सुलगता चीख़ता यौवन
इस झोंपड़ी पर कुरबान लाखों साम्राज्य
चिनाब में लाखों बार बाढ़ आई, सब कुछ बह गया

---

1. *अध्यापक पूर्ण सिंह*, सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 23

किंतु उसने ज़ंजीरों से बाँधकर बचा रखी
अपने किनारे पर यह झोंपड़ी
यह झोंपड़ी सदा-सदा से क़ायम है
दीया जल रहा है
सोहणी का फ़कीर बादशाह यहीं रहता है।

कवि पूर्ण सिंह के लिए 'सोहणी की झुग्गी' शाश्वत जीवन का प्रतीक बन गयी। पूरी कविता में कहीं भी रूमानियत का स्पर्श नहीं है। चिनाब के उस किनारे तारिका-सी चमकती हुई झोंपड़ी दिव्य प्रेम के नित्य और शाश्वत स्वरूप का प्रतीक बन कर कवि की चेतना में मूर्त हो उठी है।

पूर्ण सिंह के लिए सारी सृष्टि ईश्वरीय विभूति की रहस्यमयी अभिव्यक्ति है। इसका कण-कण किसी दिव्य लोकोत्तर सत्ता के इंगित पर नृत्य करता प्रतीत होता है। *खुल्हे मैदान* पंजाबी कविता संग्रह भाग दो में संगृहीत 'कृष्ण जी' शीर्षक कविता में यह भावना बड़े ही भव्य और उदात्त रूप में व्यक्त हुई है। इस कविता का हिन्दी रूपान्तर देखिए—

उछलती-उछलती चाव से भरी-भरी
नाचती-सी बह रही है नीली यमुना
बनाव-सिंगार में जैसे कोई अप्सरा
कदंब का पेड़ किनारे पर झूमता
उसी यमुना के राग के नाद-ताल के साथ

दिखाई दिया कृष्ण खड़ा कदंब के नीचे
क्षण भर के लिए मौन हुई कृष्ण की बाँसुरी।
टेढ़ी-सी छवि भी, दायाँ पैर बाँयें हाथ पर रखा, ताल और स्वर में
और मुकुट सरका थोड़ा-सा एक ओर
और मैंने देखा हिले मुकुट में लटकते हीरे
अचंभा मैंने देखा, उनके साथ हिले तारे आकाश के।

झाड़ी-झाड़ी कण-कण हिल जाता।
मुकुट जब हिला
तारे सभी आकाश के हिल गये,
सुंदर कोई रहस्य है ईश्वर का।[1]

---

1. *अध्यापक पूर्ण सिंह*, सं डॉ. नगेन्द्र, पृ. 70

इस संग्रह की एक कविता 'हनुमान' शीर्षक है। हनुमान राम के अनन्य सेवक हैं। लोक-मानस में वे अनन्त शौर्य एवं शक्ति के प्रतीक महावीर के रूप में प्रतिष्ठित हैं। पूर्ण सिंह को उनका यह रूप प्रिय है जो राममय है। हनुमान के लिए संसार की मूल्यवान से मूल्यवान वस्तु भी तुच्छ है, यदि वह राम-रहित है। कहा जाता है कि लंका का राज्य प्राप्त करने के बाद विभीषण ने हनुमान को मणियों की एक अत्यन्त मूल्यवान माला भेंट में दी थी। हनुमान ने एक-एक मणि को तोड़कर देखा। उन्हें उनमें कहीं राम नहीं दिखाई दिये। उन्होंने पूरी माला तोड़कर फेंक दी। पूर्ण सिंह ने इस भावना को वड़ी सहजता से मूर्त किया है—

दहकती हुई एक माला लालों की
हनुमान को लंका के राजा ने भेंट की
लाखों करोड़ों की वह माला
जल दमकता क़हर कमाल से मनका-मनका
कैसी चमकती डोरी
पर हनुमान को तो खाने का स्वाद था
तोड़-तोड़ देखता, इनमें कोई गिरी ?

गिरी न निकली कोई
तोड़-तोड़ देखता
यह क्या ? इनका दिल नहीं !
चेहरे इनके कितने दमकते थे !
अंदर इनके कहीं राम नाम नहीं !
यह लाली कैसी चढ़ी थी !
दंग होकर तोड़ता और फेंकता—
माणिक निर्जीव थे।

इस कविता पर टिप्पणी करते हुए महीप सिंह ने लिखा है—"धन की निरर्थकता पर कैसा सहज मानवीय व्यंग्य है।"[1] वस्तुतः यहाँ धन की निरर्थकता पर व्यंग्य ही नहीं है, संसार की उस सारी चमक-दमक और प्रदर्शन-प्रियता की व्यर्थता का गहरा अहसास भी है यदि उसके मूल में दिव्य चेतन सत्ता के अस्तित्व का बोध नहीं है। हनुमान के लिए दमकते हुए माणिक इसलिए निर्जीव और व्यर्थ थे कि उनमें कहीं राम नहीं थे।

---

1. *अध्यापक पूर्ण सिंह*, सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 5

पूर्ण सिंह ने पौर्वात्य एवं पाश्चात्य कविता का गम्भीर अध्ययन किया था। इस अध्ययन ने उनकी रचनाशीलता को प्रभावित भी किया था किन्तु जीवन के तनावपूर्ण क्षणों की जटिल अनुभूतियों को व्यक्त करने वाली कविता उन्हें कभी भी आकृष्ट नहीं कर सकी। काव्य के सम्बन्ध में उनके विचार पूर्णतः आध्या!त्मिक बने रहे। इसीलिए पाश्चात्य कवियों में उन्हें कुछ थोड़े से कवि ही प्रभावित कर सके हैं। विश्व-प्रसिद्ध कवि शेक्सपियर तक को उन्होंने नकार दिया है। वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—"हमारी श्रेष्ठतम कविता पृथ्वी पर ईश्वर का अवतरण है। उसका नाम भर ही सबसे जीवंत गीत है। उसको भूलने का अर्थ है मृत्यु। प्रियतम की उपस्थिति में उस अनिर्वचनीय आनंद की अनुभूति से जैसे हमें सब कुछ मिल जाता है।"[1] अन्यत्र वे कहते हैं—"सच्ची कविता तो हमें मुक्त करती है। उत्तेजना में मुक्ति सम्भव नहीं है चाहे वह कितनी भी तीव्र क्यों न हो। हमारी आत्मा में जो दिव्य तत्त्व है उसकी पूर्ण सिद्धि में ही मुक्ति निहित है।"[2] आत्मा के दिव्यत्व की तलाश पूर्ण सिंह की कविता का मूल स्रोत है। जहाँ कहों उन्हें इस दिव्यत्व की झलक मिली, वे उसमें डूब गये। ऐसे कवियों की काव्य-चेतना को पूर्णतः आत्मसात् करने के बाद ही वे उनकी कविताओं का दूसरी भाषा में रूपान्तरण करते हैं। संस्कृत के *गीत-गोविन्द* पंजाबी के कवि भाई वीर सिंह की रचना *नरगिस* तथा सिख गुरुओं की दिव्य वाणी के अंग्रेज़ी रूपान्तर इसी स्तर पर किये गये हैं। ये रूपान्तर इतना डूब कर किये गये हैं कि सर्वथा मौलिक प्रतीत होते हैं। पूर्ण सिंह द्वारा रूपान्तरित कविताओं का परिमाण भी कम नहीं है। इन कविताओं की प्रशंसा मुक्त कण्ठ से की गई है। यहाँ हम कवि पूर्ण सिंह द्वारा किये गये *गीत-गोविन्द* के अंग्रेज़ी रूपान्तरण से उदाहरण देकर यह दिखाना चाहेंगे कि किस प्रकार उन्होंने जयदेव की दिव्य अनुभूति के घनत्व को आकार देने वाले कल्पनात्मक परिवेश के साथ तादात्म्य स्थापित करके उसे अपनी सर्जनात्मक कल्पना के माध्यम से नृव्य रूप में साकार कर दिया है। *गीत-गोविन्द* की सर्जनात्मक प्रेरणा को स्पष्ट करते हुए वे कहते है—

> *"The whole song of the 'Gita-Govind' is pervaded by tha supreme creative feelings which divides reality into the two il lusive forms of male and female and makes them dance like two flames of life, till the measure of perfection is fulfilled by al*

1. *अध्यापक पूर्ण सिंह*, सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 85
2. वही, सं. डॉ. नगेन्द्र पृ. 85

forms vanishing again into one."[1]

अर्थात् पूरे *गीत-गोविन्द* में वह सर्जनात्मक परम सत्ता परिव्याप्त है जो एक ही तत्त्व को पुरुष और प्रकृति में विभक्त करके उन्हें दो जीवन-ज्योतियों के रूप में तब तक नचाती है जब तक सभी रूपात्मक सत्ताएँ पूर्णत्व प्राप्त करके पुनः एक ही सत्ता में विलीन नहीं हो जातीं। *गीत-गोविन्द* की इस मूल भावना को आत्मसात करके उन्होंने उसका जो अंग्रेज़ी रूपान्तर किया है उससे इस कालजयी रचना का एक नया अर्थ खुलता है। एक उदारहण अप्रासंगिक नहीं होगा।

कृष्ण अनेक गोपियों के साथ नृत्यरत हैं। राधा उन पर अपना विशेष अधिकार समझती हैं। कृष्ण के इस आचरण से कुछ कुपित होकर वह कुंज की एक घनी छाया में जाकर बैठ जाती हैं और सोचने लगती हैं–

Radha : In this forest Imeditate on Him, My Beloved !
How his lips incornadined pour out floods of melody
I see His flute at his lips !
and His fingers on His flute,
Ah ! his moving lips touch my lips !
and his fingers touch my heart !
How his ear-rings shake with the
liquid rhythm of his trembling flute,
His laughing eyes, his waving forehead
His dancing flesh !
I think of him, whose presence puts these Brides
Into a maddening frenzy of Love !
I think of him, who is dancing perfection
with a hundred brides !
He is my Krishna.
I meditate on him, whose body is the colour
of the purple cloud, adorned with the rain-bow
in th sky] whose tresses are embellished
with peacock feathers
that ripple with a hundred crescents.

---

1. *द स्पिरिट ऑफ़ ओरियण्टल पोयट्री* पृ. 140

कहना न होगा कि उपर्युक्त पंक्तियाँ *गीत-गोविन्द* के दूसरे सर्ग के निम्नलिखित दो श्लोकों को ध्यान में रखकर लिखी गई हैं। श्लोक इस प्रकार हैं—

संचरदधरसुधा मधुरध्वनि मुखरितमोहनवंशम्
चलित दृगञ्चल चञ्चल मौलिकपोलविलोलवतंसम्।।
रासे हरिभिह विहितविलासम्।
स्मरति मनो ममकृतपरिहासम्।।
चन्द्रकचारू मयूरशिखण्डकमण्डल वलयित केशम्।
प्रचुर पुरन्दर धनुरनुरञ्जित मेदुरमुदिर सुवेशम्।।

पूर्ण सिंह ने पहले श्लोक की चार पंक्तियों में निहित भाव को कुल दश पंक्तियों में पल्लवित करके प्रस्तुत किया है। उनके सामने छंद में प्रयुक्त शब्द और पद नहीं है, वरन् मूल संवेदना है। उन्होंने अपनी कल्पना से वहुत कुछ जोड़ दिया है। अंग्रेज़ी अनुवाद में तीसरी, चौथी और पाँचवीं पंक्तियों में जो कुछ कहा गया है, वह मूल श्लोक में नहीं है। ''मैं उनकी बाँसुरी को उनके अधरों पर और उनकी उँगलियों को बाँसुरी पर थिरकते हुए देखती हूँ। ओह ! उनके काँपते हुए अधर मेरे अधरों को और उनकी उँगलियाँ मेरे हृदय को स्पर्श करती हैं।'' यह पूर्ण सिंह द्वारा मूल श्लोक की भावना का पल्लवन है। मूल श्लोक में राधा केवल एक बार कृष्ण को स्मरण करने की बात कहती हैं। पूर्ण सिंह ने राधा की स्मृति-जन्य आकुलता के घनत्व की व्यंजना के लिए तीन बार कृष्ण के स्मरण की वात कही है। दूसरे श्लोक के अनुवाद में यह पल्लवन नहीं है किन्तु श्लोक की भावना को पूरी तरह सुरक्षित रखते हुए अंग्रेज़ी रूपान्तर किया गया है। स्पष्ट है कि पूर्ण सिंह के अनुवाद मात्र अनुवाद नहीं हैं। उनमें मूल रचना में निहित केन्द्रीय संवेदना को नये ढंग से पुनः सृजित किया गया है। इसीलिए उनके अनुवादों में सर्वथा नया स्वाद और रस मिलता है। वे जिस भाषा से अनुवाद करते हैं और जिस भाषा में अनुवाद करते हैं दोनों के संरचनात्मक ढाँचे को बराबर ध्यान में रखते हैं। पूर्ण सिंह के अनुवादों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि मूल रचना को पढ़े विना भी हम अनुवादों के माध्यम से रचयिता के मानस का, उसके रचनाशील व्यक्तित्व का पूरा-पूरा साक्षात्कार कर सकते हैं। इसीलिए पूर्ण सिंह के अनुवाद उनके कवि-व्यक्तित्व को और भी महिमामय बनाकर प्रस्तुत करते हैं। अपनी इसी विशेषता के कारण पूर्ण सिंह प्राच्य कविता की अन्तरात्मा का साक्षात्कार कर सके हैं और उसकी प्राणवत्ता से नवजागरण कालीन मनोभूमि

को नया आलोक और नई ऊर्जा प्रदान कर सके हैं।

शैली की दृष्टि से देखा जाय तो पूर्ण सिंह ने प्रबंध और मुक्तक दोनों ही प्रकार की रचनाएँ की हैं। उनकी श्रेष्ठ प्रबंध रचना *पूरन योगी* के जीवन-वृत्त से सम्बन्धित है। यह *खुल्हे मैदान* के प्रथम भाग में संगृहीत है। इसमें पूर्ण सिंह ने कथावृत्त के सन्तुलन पर तो ध्यान दिया ही है, बीच-बीच में आने वाले मार्मिक प्रसंगों का भी बड़ा ही स्वाभाविक और भावपूर्ण चित्रण किया है। विशेषतः लूणा रानी के मनोभावों, पूरन की माता की चिन्ता एवं कातरता तथा रानी सुन्दरां और पूरन के वार्तालाप के वर्णन में उन्होंने अपनी काव्य-प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है। यह होने पर भी पंजाबी साहित्य में पूर्ण सिंह का महत्त्व उनकी विशिष्ट मुक्तक शैली के कारण ही मान्य है। उनके महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए कर्तार सिंह ने कहा है—"भाई वीर सिंह के बाद अध्यापक पूर्ण सिंह का नाम (1881 से 1931 ई.) पंजाबी कविता में शिरोमणि माना जाता है। आपने अमेरिकन कवि वाल्ट ह्विटमैन जैसी पंजाबी में खुली कविता लिखी जिसका पदान्त या तुक नहीं मिलता। गद्य की तरह आपकी कविता छंद-बंधन से मुक्त दिखाई देती है, परन्तु जोश, ख़रोश, सोच-विचार, उड़ान एवं प्रवाह की धारा आश्चर्यजनक रूप से दीख पड़ती है। छंदहीन, अतुकांत होने पर भी कविता में स्वाद है, रस है और है अनुभूति का उभार। अध्यापक पूर्ण सिंह प्रकृत कवि हैं, वह कुदरत की शिल्पकारी देखकर झूम उठते हैं, मयूर की तरह नाच उठते हैं।"[1]

इसमें सन्देह नहीं कि पूर्ण सिंह प्रकृत कवि हैं। उनमें नैसर्गिक काव्य-प्रतिभा है। किन्तु इतना कह देने से ही पंजाबी साहित्य में उनकी विशिष्ट भूमिका का मूल्यांकन नहीं हो जाता। वास्तविकता यह है कि अभी तक पूर्ण सिंह के कवि-रूप का ठीक-ठीक आकलन नहीं हो सका है। पूर्ण सिंह का मानसिक क्षितिज अपने समय की पंजाबी-काव्य-मनीषा की सांस्कृतिक-परिधि से कहीं विस्तृत था। वे भारतीय राष्ट्रीय नवजागरण के उन आलोक-पुरुषों में अग्रणी हैं जिन्होंने भारत की राष्ट्रीय, सांस्कृतिक अस्मिता को विश्व-स्तर पर प्रतिष्ठित किया। बङ्ला-काव्य के संदर्भ में जो भूमिका रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अदा की है, वही भूमिका पंजाबी काव्य के संदर्भ में कवि पूर्ण सिंह ने अदा की है। इधर साहित्य अकादेमी से *पूरन सिंह : जीवनी ते कविता* के प्रकाशित होने के बाद विद्वानों का ध्यान पूर्ण सिंह की रचनाओं की ओर विशेष रूप से गया है और उनका नये सिरे से

---

1. पंजाबी साहित्य के साठ वर्ष, *हीरक जयंती ग्रंथ*, ना. प्र. स., काशी, पृ. 550

मूल्यांकन होने लगा है। इस दिशा में डॉ. एम. एस. रन्धवा, डॉ. महीप सिंह, डॉ. हरभजन सिंह और कर्तार सिंह दुग्गल के नाम उल्लेखनीय हैं। कर्तार सिंह दुग्गल को पूर्ण सिंह के अंग्रेज़ी साहित्य पर विचार करने के बाद कहना पड़ा है—"कविता मानो पूर्ण सिंह को घुट्टी में पिलाई गई थी। काव्य उनका जीवन था। गिने-चुने लोगों का सान्निध्य उन्हें प्रिय था। कार्लाइल और वाल्ट ह्विटमैन और इधर स्वदेश में, रवीन्द्रनाथ ठाकुर और भाई वीर सिंह के प्रति उनका विशेष अनुराग था। माँ सरस्वती के इस दुलारे का एक-एक शब्द मानो एक गीत है।"[2] जिस रचनाकार का एक-एक शब्द अपने आप में एक गीत है, उसके पूरे रचना-संसार का गहन अध्ययन करने के बाद ही उसके महत्त्व और मूल्य को समझा जा सकता है। अभी पूर्ण सिंह की रचनाएँ अप्रकाशित हैं। हमारा विश्वास है कि भविष्य में उनकी प्रकाशित-अप्रकाशित रचनाओं को जितनी ही गहराई से देखा-परखा जायेगा उतना ही न केवल पंजाबी वरन् सम्पूर्ण भारतीय साहित्य के संदर्भ में उनका महत्त्व बढ़ता जायेगा।

---

1. *अध्यापक पूर्ण सिंह* सं. डॉ. नगेन्द्र पृ. 28

7

उपसंहार

अध्यापक पूर्ण सिंह उन्नीसवीं सदी के भारतीय नवजागरण की अन्तिम कड़ी विवेकानन्द (1863-1902 ई.) से सीधे जुड़े हुए थे। पूर्ण सिंह के गुरु स्वामी रामतीर्थ विवेकानन्द से प्रभावित थे। उनके व्यावहारिक वेदान्त-दर्शन पर विवेकानन्द के दर्शन की छाया स्पष्ट है। यही कारण है कि अध्यापक पूर्ण सिंह के सामाजिक, धार्मिक विचार विवेकानन्द के विचारों के वहुत निकट हैं। विवेकानन्द की विश्वदृष्टि का निर्माण अध्यात्म और विज्ञान के सामंजस्य से हुआ है। यही सामंजस्य हमें अध्यापक पूर्ण सिंह में भी दिखाई पड़ता है। मनुष्य मात्र की एकता, धार्मिक पाखंड का विरोध, देश-प्रेम, निचले वर्ग के अधिकारों का समर्थन तथा किसानों और मज़दूरों का हित-चिन्तन विवेकानन्द की विचार-धारा के प्रधान तत्त्व हैं। थोड़े-वहुत परिवर्तन के साथ यही तत्त्व हमें पूर्ण सिंह के चिन्तन में भी प्राप्त होते हैं। स्वामी रामतीर्थ के दिवंगत हो जाने के बाद पूर्ण सिंह भाई वीर सिंह के सम्पर्क आये। भाई वीर सिंह की प्रेरणा से वे सिख गुरुओं की धर्मसाधना की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुए और परम-तत्त्व के प्रति चिर-वियुक्त भक्त की विस्वलता से भावित उनकी कविता में रहस्य का पुट और गहरा हो गया। उनके व्यक्तित्व में यह मोड़ 1912 ई. के बाद लक्षित होता है। यहीं वे विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ से थोड़ा अलग हो जाते हैं। इसके वावजूद उनके रचनाकार को सिख धर्म के अनुशासन में बाँध कर नहीं देखा जा सकता। उनका रचनाशील व्यक्तित्व मध्ययुग की सीमाओं में सिमटा हुआ नहीं है। उन्होंने प्राच्य एवं पाश्चात्य साहित्य के प्राचीन एवं नवीन उदारचेता महान् रचनाकारों का अध्ययन करके अपने मानसिक क्षितिज को विस्तृत किया था।

वे आस्तिक थे, भक्त और रहस्यदर्शी थे किन्तु उनका ईश्वर इस लोक से परे सर्वथा अमूर्त नहीं था। इसी लोक में जहाँ सत्य है, प्रेम है, सौन्दर्य है, त्याग है, समर्पण है, पवित्रता है, सहजता है, कर्मठता है, वहाँ उनका ईश्वर विद्यमान है। वे सच्चे अर्थों में एक सांस्कृतिक महापुरुष थे। राष्ट्रीय नवजागरण के आलोक-स्तम्भ थे।

पूर्ण सिंह ने सबसे अधिक अंग्रेज़ी में लिखा है। उस समय किसी भी पंजाबी भाषी रचनाकार के लिए यह एक नई बात थी। सिख गुरुओं की वाणी को अंग्रेज़ी में रूपान्तरित करके पूर्ण सिंह ने पाश्चात्य जगत् को उसके महत्त्व से अवगत कराया। वस्तुतः पूर्ण सिंह पारंपरिक भारतीय उदात्त जीवन-मूल्यों को आधुनिक पाश्चात्य दर्शन एवं विज्ञान के आलोक में नया रूप देकर प्रस्तुत करना चाहते थे। यही स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ ने किया था। पूर्ण सिंह ने स्वामी रामतीर्थ की जीवनी 1924 ई. में लिखी थी। इससे स्पष्ट है कि स्वामी राम के प्रति उनका आकर्षण अन्त तक बना रहा। स्वामी राम ने टोकियो में 'सफलता का रहस्य' (The secret of success) विषय पर जो वक्तव्य दिया था उसमें कर्मठता (Work), आत्मत्याग (Self sacrifice), आत्म-विस्मृति, (Self-forgetfulness), विश्वप्रेम (Universal love) प्रसन्नता (Cheerfulness), निर्भयता (Fearlessness) और आत्म-विश्वास (Self-Confidence) पर विशेष बल दिया था। पूर्ण सिंह ने उनकी जीवनी में यह पूरा वक्तव्य ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सफलता के ये सूत्र उन्हें भी मान्य थे। स्वामी राम ने इन सूत्रों को पारंपरिक भारतीय जीवन-मूल्यों से ही उपलब्ध किया था। इन्हें प्रस्तुत करने की उनकी शैली और भाषा नई थी। उदाहरण के लिए गीता में अनासक्त भाव से कर्म करने की बात को विशेष महत्त्व दिया गया है। स्वामी राम ने इसे ही 'प्रसन्नता' (Cheerfulness) शीर्षक के अन्तर्गत इस प्रकार प्रस्तुत किया है—"आप अपने श्रम के पुरस्कार की चिन्ता न करें, भविष्य के लिए विशेष समुत्सुक न हों, संदेहशील न बनें, सफलता और विफलता की बात न सोचें कार्य के लिए कार्य करें, कार्य स्वयं में अपना पुरस्कार है। (Be not anxious as to the reward of your labours, mind not the future, have no seruples, think not of success and Failure, work for work's sake,. work is its own reward.)"

पूर्ण सिंह ने परंपरा का मंथन करके ही अपनी दृष्टि का निर्माण किया था। भारतीय वेदान्त और बौद्ध दर्शन तथा मध्यकालीन धर्मसाधना से लब्ध

अध्यात्म-तत्त्वों को ही उन्होंने आधुनिक पाश्चात्य दर्शन एवं विज्ञान के आलोक में निखार कर प्रस्तुत किया है। सिख गुरुओं की सत्यपूत वाणी, सूफ़ी सन्तों की प्रेम-गर्भित फक्कड़ता तथा पंजाबी रोमांस कथाओं की लोकोत्तर कारुणिकता को विश्व के सांस्कृतिक मंच पर नयी अर्थवत्ता के साथ प्रस्तुत करके पूर्ण सिंह ने असाधारण महत्त्व का काम किया है।

भारतीय साहित्य विशेषकर पंजाबी साहित्य को उनकी महती देन का ठीक-ठीक मूल्यांकन अभी नहीं हो पाया है। यह कह देना पर्याप्त नहीं है कि पूर्ण सिंह प्रकृत कवि हैं, उन्हें पंजाब की भूमि से बेहद प्यार है और उनकी रचनात्मक मनोभूमि रहस्यवादी है। पूर्ण सिंह ने निश्चित रूप से अपने समय का अतिक्रमण किया है। वे असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न विश्वचेता रचनाकार हैं। हिन्दी में कुल छह निबन्ध लिखकर उन्होंने अपना स्थायी महत्त्व क़ायम कर लिया है। भविष्य में उनके साहित्य का जितना ही निरीक्षण-परीक्षण होगा उनका महत्त्व बढ़ता जायेगा। आधुनिक पंजाबी साहित्य के संदर्भ में उनकी भूमिका लगभग वही या वैसी ही है जैसी बाङ्ला साहित्य के संदर्भ में विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की। मात्र इक्यावन वर्ष की अल्प आयु में इस प्रातिभ रचनाकार के निधन से पंजाबी साहित्य की जो क्षति हुई, उसकी पूर्ति असम्भव है।

सहायक सामग्री

पूर्ण सिंह की मूल रचनाएँ

एन आफ़्टर नून विथ सेल्फ़	1922
द बुक आफ़ द टेन् मास्टर्स	1926
द स्पिरिट बार्न पीपुल	1929
द स्पिरिट आफ़ ओरियण्टल पोयट्री	1926
द स्टोरी आफ़ स्वामी राम	1935
द सिस्टर्स आफ़ दी स्पिनिंग हील	1921
अनस्ट्रेंग बीड्स	1923
सेविन बास्केट्स आफ़ प्रोज़ पोयम्स	1928
नरगिस	1924
खुल्हे लेख	1929
खुल्हे घुंड	1923
खुल्हे मैदान	1920
सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबन्ध	1974

समीक्षात्मक ग्रंथ

पूर्ण सिंह	रमिन्दर सिंह	1972
पूर्ण सिंह जीवनी ते कविता	माया पूर्ण सिंह	1965

पूर्ण सिंह द यूनिवर्सिटी सिख एसोसियेशन लाहौर		1940
रिव्यूज़ आव पूरन सिंह्स बुक्स		*1961*
सरदार पूर्ण सिंह,	डॉ. रामअवध शास्त्री	1992
अध्यापक पूर्ण सिंह	(सं.) डॉ. नगेन्द्र	1983
पूरन सिंह ए लाइफ़ स्केच	माया देवी पूर्ण सिंह	1993
आज का भारतीय साहित्य	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	1972
हिन्दी साहित्य का इतिहास,	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,	1929,1941
हीरक जयंती ग्रंथ,	ना. प्र. स. काशी	सं. 2011
बलवीर सिंह स्मृति ग्रंथ,		1976

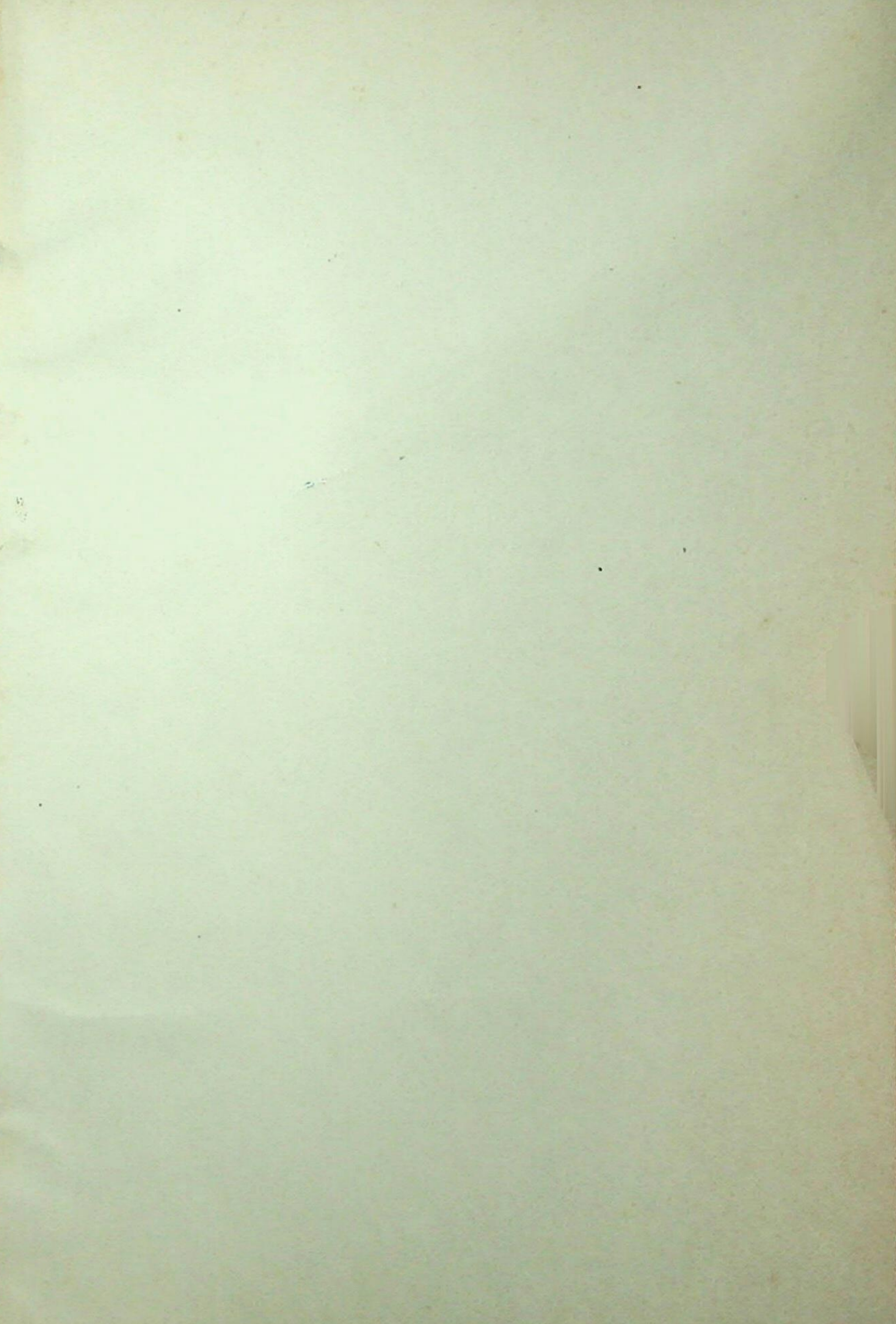
अन्य रचनाएँ

गीत-गोविन्द काव्यम्	भार्गव पुस्तकालय, काशी	1923
पुनरुत्थान (उपन्यास)	*लिओ टाल्सटाय,*	1986

पत्र-पत्रिकाएँ

विशाल भारत	मई,	1931
विशाल भारत	सितम्बर,	1921

○○



प्रसिद्ध हिन्दी-सेवी, आलोचक और अनुवादक **अध्यापक पूर्ण सिंह** का जन्म सलहड (ऐबटाबाद) में 1881 ई. में हुआ था। उनके पिता थे सरदार करतार सिंह और माता परम देवी। मिशन स्कूल, रावलपिंडी से दसवीं की पढ़ाई पूरी कर उन्होंने डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर (अब पाकिस्तान में) में दाख़िला लिया और रसायन-शास्त्र में शिक्षा पूरी कर 1900 ई. में टोकिओ, जापान की इम्पीरियल युनिवर्सिटी से अपना पाठ्यक्रम पूरा किया। वहीं स्वामी रामतीर्थ के प्रभाव में आकर उन्होंने संन्यास ले लिया और 'थंडरिंग डॉन' नामक पत्रिका का प्रकाशन भी आरंभ कर दिया। सन् 1904 में भारत लौटने पर, पारिवारिक दबाव के चलते वे गृहस्थ बन गये। उन्होंने विक्टोरिया डायमंड जुबली हिन्दू टेक्नीकल इन्स्टीच्यूट, लाहौर के प्रिंसिपल पद और फिर 1907 से फ़ॉरेस्ट रिसर्च इन्स्टीच्यूट में रसायन सलाहकार पद पर कार्य किया। कुछ वर्षों तक ग्वालियर के सरदार नगर में एक कारख़ाने को अपनी सेवाएँ प्रदान करते रहे। सन् 1926 में वे बारां आ गये और जीवन के अन्तिम समय तक साहित्य-सेवा और अध्यात्म चर्चा में लगे रहे। वहीं उनकी मृत्यु तपेदिक (1931 में) से हुई।

हिन्दी और पंजाबी के पाठकों में समान रूप से लोकप्रिय **अध्यापक पूर्ण सिंह** बड़े गंभीर और विनम्र स्वभाव के थे। उन्होंने साहित्य की लगभग सभी विधाओं में अपनी लेखनी चलाई। उन्होंने कार्लाइल, इमर्सन, टाल्सटॉय जैसे महान लेखकों की रचनाओं के अनुवाद भी किये जो पाठकों में बेहद लोकप्रिय हुए।

प्रस्तुत विनिबंध के लेखक **डॉ. रामचंद्र तिवारी** ने अध्यापक पूर्ण सिंह के जीवन और कृतित्व पर बड़ी प्रामाणिकता से सामग्री प्रस्तुत की है और हिन्दी पाठकों को उनके अविस्मरणीय अवदान से परिचित कराया है।

ISBN : 81-260-498-3

आवरण : सुरेन्द्रपाल सिंह

मूल्य : 25 रुपये